साहित्य-रत्न-माला—५

हिन्दी प्रयोग

[हिन्दी भाषा के शुद्ध प्रयोग बतलानेवाली पुस्तक]

लेखक

रामचन्द्र वर्म्मा

प्रकाशक

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,

२०, धर्म्मकूप, बनारस ।

[मूल्य १।।)

समर्पण

हिन्दी के उन नव-युवक और होनहार

विद्यार्थियों को,

जिनसे मातृ-भाषा और जन्म-भूमि को

बड़ी बड़ी आशाएँ हैं और

जो

हिन्दी का स्वरूप विशुद्ध और निर्मल

कर सकते हैं,

यह पुस्तक बहुत ही आशापूर्वक

समर्पित है।

भूमिका

आज-कल सारे भारत में हिन्दी का जितना अधिक प्रचार है, उतना और किसी भाषा का नहीं है ; और लक्षणों से जान पड़ता है कि बहुत जल्दी वह समय आनेवाला है, जब कि हिन्दी का प्रचार देश के कोने-कोने में और घर-घर हो जायगा। जितने थोड़े समय में हिन्दी का जितना अधिक प्रचार हुआ है, उतने थोड़े समय में कदाचित् ही संसार की किसी और भाषा का उतना अधिक प्रचार हुआ हो। यह हमारे लिए परम प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है।

पर इसके साथ ही एक बहुत अधिक खेद और दुर्भाग्य की बात भी लगी हुई है। वह यह कि हम हिन्दी लिखनेवाले अपनी भाषा की शुद्धता का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। हिन्दी के बहुत अधिक लेखक मन-मानी भाषा लिखते है और मन-माने प्रयोग करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लोग समझते हैं कि हम जो कुछ लिख दें, वही हिन्दी है। उनका यह समझना इसलिए बहुत-कुछ ठीक भी हो सकता है कि प्रायः उनकी भूलों की ओर कभी कोई ध्यान नहीं देता। ध्यान दे भी कौन? यहाँ ईश्वर की दया से सभी एक-से हैं, बल्कि एक-से-एक बढ़कर हैं। यदि कोई दूसरों की दस भूलें दिखलावें, तो दूसरे उसकी सौ भूलें दिखला सकते हैं। इसलिए भाषा की अशुद्धियों के सम्बन्ध में सब लोग मौन रहना ही अच्छा समझते हैं।

पर क्या यह मौन कभी हमारे लिए या हमारी भाषा के लिए अच्छा हो सकता है? मातृ-भाषा माता के समान होती है। क्या उसका स्वरूप बिगाड़नेवाला कभी सपूत कहला सकते हैं? या कभी उनका कल्याण हो सकता है? चाहिए तो यह कि हम अपनी भाषा का स्वरूप इतना अधिक विशुद्ध और मनोहर रक्खें, कि वह दूसरों के लिए आदर्श हो। जिस प्रकार हम अपने साहित्य का

भण्डार अच्छे-अच्छे ग्रन्थ-रत्नों से भरना चाहते हैं, उसी प्रकार हमें अपनी भाषा का स्वरूप भी परम निर्मल और उज्वल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। रद्दी और भद्दी भाषा में लिखा हुआ अच्छे-से-अच्छा साहित्य भी कभी आदरणीय और स्थायी नहीं हो सकता।

बात बहुत-कुछ बिगड़ चुकी है और दिन-पर-दिन बिगड़ती चली जा रही है। इसलिए अब हम लोगों को सचेत होकर भाषा के सुधार में अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए। यही सोचकर प्रायः दो वर्ष पहले मैंने 'अच्छी हिन्दी' नामक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में मैंने हिन्दी भाषा में होनेवाली सैकड़ों-हजारों प्रकार की भूलों की ओर हिन्दीवालों का ध्यान खींचने का प्रयत्न किया था। हर्ष का विषय है कि उस पुस्तक के कारण बहुत से लोगों का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर हो चला है। सभी प्रकार के लेखक भाषा की शुद्धता की आवश्यकता मानने लगे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तो उक्त पुस्तक का इतना अधिक आदर हुआ कि एक-डेढ़ वर्ष के अन्दर ही देश भर के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों और हिन्दी की बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ लेनेवाली संस्थाओं ने उसे अपने यहाँ के पाठ्य-क्रम में रख लिया। अब इतना तो हो गया है कि जो विद्यार्थी एक बार वह पुस्तक पढ़ लेंगे, वे बहुत सी भूलों से अनायास बच जायँगे।

परन्तु मैं समझता हूँ कि भाषा की शुद्धता की ओर विद्यार्थियों का ध्यान और भी पहले दिलाना चाहिए। विश्वविद्यालयों आदि में पहुँचने पर तो विद्यार्थियों की भाषा बहुत कुछ मँज चुकती है—वे एक विशेष प्रकार की भाषा लिखने के बहुत-कुछ अभ्यस्त हो चुकते हैं। उस समय उनकी भाषा में बहुत अधिक सुधार नहीं किया जा सकता। पर यदि उससे कुछ और पहले ही उन लोगों को बतला दिया जाय कि भाषा लिखने में कितने प्रकार की और कैसी कैसी भूलें होती हैं, तो वे आरम्भ में ही उन भूलों से बचने लगेंगे;

और आगे चलकर वे निर्दोष और शुद्ध भाषा लिखने लगेंगे। यही सोचकर यह पुस्तक ऐसे विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है, जिन्हें व्याकरण का साधारण ज्ञान हो चुका हो। अर्थात् आज-कल के स्कूलों के नवें-दसवें दरजों के विद्यार्थियों या उनके समान योग्यता रखनेवाले अन्य विद्यार्थियों के हित के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि और लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते। इसमें भाषा की शुद्धता से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी ऐसी बातें बतलाई गई हैं, जो अच्छे-अच्छे लेखकों के लिए भी बहुत अधिक उपयोगी हो सकती हैं। जब इस प्रकार की बातें विद्यार्थी लोग स्कूल छोड़ने से पहले ही सीख लेंगे, तब उनका एक ऐसा बहुत बड़ा दल तैयार हो जायगा, जो हिन्दी भाषा के सब दोषों का समूल नाश करके उसका मुख उज्ज्वल कर दिखलावेगा।

अपने आदरणीय मित्र पटने के राय ब्रजराजकृष्ण जी का मैं बहुत अधिक अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने प्रायः एक वर्ष पूर्व 'अच्छी हिन्दी' देखकर मुझसे कहा था कि यदि इसी प्रकार की एक पुस्तक हाई स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए बन जाय, तो बहुत अच्छा हो। यदि उनका यह शुभ परामर्श मुझे न मिलता, तो न जाने यह पुस्तक बनती भी या न बनती। इसलिए इस पुस्तक की तैयारी का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। इसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक अपने प्रिय मित्र पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र, एम० ए० साहित्य-रत्न को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूल सकता, जिनसे मुझे इस सम्बन्ध में कई बहुत ही उपयोगी परामर्श मिले हैं।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
सं० २००३

रामचन्द्र वर्म्मा

विषय-सूची

हिन्दी प्रयोग

१

शब्दों के प्रकार

हर भाषा में कई प्रकार के शब्द होते हैं। इसका कारण यह है कि हर भाषा और उसके बोलनेवालों का कुछ इतिहास होता है। भाषा बहुत दिनों में बनती है और बराबर कुछ-न-कुछ बदलती रहती है। बहुत से पुराने शब्द अनेक कारणों से छूट जाते हैं, और उनकी जगह नये शब्द बनते रहते हैं और बाहर से आकर मिलते भी रहते हैं। जब हमें कोई नई चीज, नया विचार या नया भाव मिलता है, तब या तो हम उसके लिए कोई नया शब्द गढ़ लेते हैं या किसी दूसरी भाषा से ले लेते हैं। इसके सिवा बराबर बोल-चाल में आने के कारण कुछ शब्दों के रूप बदलते भी रहते हैं। इन सब बातों का भाषा के रूप पर बहुत प्रभाव पड़ता है; और उस प्रभाव का फल यह होता है कि भाषा का रूप सदा कुछ-कुछ बदलता चलता है और उसमें अनेक प्रकार के शब्द बढ़ते रहते हैं।

किसी समय हमारे देश का सारा साहित्य संस्कृत में लिखा जाता था। पर साहित्य की भाषा सब लोगों के नित्य के व्यवहार की भाषा नहीं हो सकती। आज-कल भी हमारे नित्य के व्यवहार की भाषा कुछ और है, साहित्य की भाषा कुछ और। यही बात पहले भी थी। साधारण बोल-चाल की भाषा प्राकृत कहलाती थी। धीरे-

धीरे संस्कृत का प्रचार कम होने लगा, और प्राकृत का प्रचार बढ़ने लगा और उसी में साहित्य लिखा जाने लगा। हमारा देश बहुत बड़ा है और उसमें अनेक प्रदेश हैं। इसलिए धीरे-धीरे हर एक प्रदेश की प्राकृत भी एक दूसरी से कुछ अलग होती गई। प्राकृतों के बाद अपभ्रंश भाषाओं का विकास और प्रचार हुआ। उन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से आज-कल की हिन्दी, बँगला, गुजराती और मराठी आदि प्रान्तीय भाषाएँ निकली हैं।

हिन्दी में मुख्य रूप से दो प्रकार के शब्द हैं—एक तो संस्कृत के और दूसरे वे जो प्राकृत और अपभ्रंश के द्वारा अपना रूप बदलते हुए अब तक हमारी बोल-चाल में चले आ रहे हैं। संस्कृत के जो शब्द हम ज्यों के त्यों काम में लाते हैं, वे तत्सम कहलाते हैं। तत्सम का अर्थ है—उसके समान या ज्यों का त्यों। समय, पुस्तक, पाठ-शाला, विद्या, माता, पिता, जल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नगर, नदी, निन्दा, प्रशंसा, भोजन, निद्रा आदि शब्द संस्कृत के हैं; पर आज भी हम अपनी भाषा में उनका इन्हीं रूपों में व्यवहार करते हैं। ये सब शब्द हमने संस्कृत से ज्यों के त्यों ले लिये हैं। ऐसे सभी शब्द तत्सम कहलाते हैं।

पर हमारी भाषा में बहुत से ऐसे शब्द भी हैं जो निकले तो संस्कृत से ही हैं, पर जो हजारों वर्षों से व्यवहार में आने के कारण बहुत कुछ घिस-पिस गये हैं। अब उन शब्दों के वे रूप नहीं रह गये जो संस्कृत में थे। हम कहते हैं—'हमें नींद आ रही है।' यह 'नींद' शब्द कहाँ से आया? संस्कृत के 'निद्रा' शब्द से। हम कहते हैं—'हमें प्यास लगी है।' यह 'प्यास' शब्द संस्कृत 'पिपासा' का बिगड़ा हुआ रूप है। ऐसे शब्द तद्भव कहलाते हैं। हिन्दी में ऐसे शब्द बहुत हैं। यहाँ हम संस्कृत और हिन्दी के कुछ ऐसे शब्द देते हैं, जिनसे तत्सम और तद्भव का भेद सहज में मालूम हो जायगा।

तत्सम	तद्भव
ग्राम	गाँव
कर्म्म	काम
गृह	घर
पृष्ठ	पीठ
दन्त	दाँत
मुक्ता	मोती
ज्येष्ठ	जेठ
पत्र	पत्ता

हिन्दी भाषा इस प्रकार के हजारों तद्भव शब्दों से भरी है। सच पूछिए तो ये तद्भव शब्द ही हमारी अपनी पूँजी हैं। हमारी सब क्रियाएँ, सब सर्वनाम और बहुत सी संज्ञाएँ, विशेषण और क्रिया-विशेषण तद्भव हैं। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिन्हें देखते ही सहज में पता चल जाता है कि ये संस्कृत के किस शब्द से निकले हैं। जैसे सपना स्वप्न से, आग अग्नि से और काज कार्य्य से निकला है। पर कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनके मूल का सहज में पता नहीं चलता। जैसे फाटक बना तो है संस्कृत कपाट से, पर उसके कुछ अक्षर आगे- पीछे हो गये हैं। शब्दों के अक्षरों का इस प्रकार का हेर-फेर वर्ण-व्यत्यय कहलाता है। ऐसे ही और भी कई प्रकार हैं जिनसे यह पता चलता है कि तत्सम से तद्भव शब्द कैसे बनते हैं। पर इस विषय का एक अलग शास्त्र है।

तत्सम और तद्भव के बीच का एक और प्रकार है जो अर्द्ध-तत्सम कहलाता है। हम पहले बतला चुके हैं कि जब संस्कृत के बहुत से शब्दों के रूप कुछ बदल गये, तब वे प्राकृत के शब्द बने; और प्राकृत शब्दों के रूप जब कुछ और भी बदले, तब वे हिन्दी के तद्भव शब्द हुए। पर कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका रूप प्राकृत में तो

बदला हुआ अवश्य था, पर जो प्राकृत से हिन्दी में ज्यों के त्यों आ गये—उनके रूप में फिर कोई नया परिवर्त्तन नहीं हुआ। इस प्रकार के कुछ शब्द पुरानी हिन्दी में पाये या कहीं-कहीं गाँव-देहातों में बोले जाते हैं। जैसे सं० अग्नि से प्राकृत रूप 'अगिन' हुआ था, पर हिन्दी में वह 'आग' हो गया। अगिन अब भी कहीं कहीं गाँव-देहात में बोला जाता है। यह 'अगिन' रूप अर्द्ध-तत्सम कहलाता है। पुरानी कविताओं में पाया जानेवाला 'दई' शब्द सं० दैव का अर्द्ध-तत्सम रूप है जो आज-कल की हिन्दी में नहीं चलता। अब हम फिर उसकी जगह तत्सम 'दैव' का ही व्यवहार करने लगे हैं। 'रात' शब्द ऐसा है जो अर्द्ध-तत्सम ही है और हिन्दी में अब तक इसी रूप में चलता है। स्पष्ट है कि यह सं० रात्रि से निकला है। आज-कल की हिन्दी में ऐसे अर्द्ध-तत्सम शब्द बहुत थोड़े हैं। इसे हम शब्दों का तीसरा प्रकार मान सकते हैं।

शब्दों का चौथा प्रकार 'देशज' कहलाता है। देशज का अर्थ है, देश में उत्पन्न या देश में बना हुआ। प्रायः ऐसा होता है कि जब कोई नई चीज हमारे सामने आती है और हम उसका पहले से चला आया हुआ नाम नहीं जानते या वैसा कोई नाम हमें नहीं मिलता, तब हम उसके लिए आप ही एक नया नाम गढ़ लेते हैं। 'देशज' इसी प्रकार के गढ़े हुए शब्द हैं। खिड़की, रद्दा, लच्छा, लगभग, गड़बड़ आदि शब्द देशज हैं। पर हम इस प्रकार के सब शब्दों को निश्चित रूप से देशज भी नहीं कह सकते। हो सकता है कि आगे चलकर हमें पता लगे कि अमुक देशज शब्द संस्कृत अथवा और किसी भाषा के अमुक शब्द से निकला या अमुक प्रकार से बना है। साधारणतः होता यही है कि जिन शब्दों के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से यह नहीं जानते कि वे कहाँ से आये या किस शब्द से निकले हैं, उन्हें हम देशज के वर्ग में रख लेते हैं। पर इसका यह अर्थ

नहीं है कि सभी देशज शब्द इसी प्रकार के हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, किसी दूसरे शब्द की सहायता के बिना भी कुछ शब्द गढ़ लिये जाते हैं और वही देशज कहलाते हैं। यह बात दूसरी है कि हम भूल या अज्ञान से कुछ ऐसे शब्दों को भी देशज मान लें जो वास्तव में देशज नहीं, बल्कि तद्भव हैं।

शब्दों का एक और प्रकार है जो 'अनुकरण-वाचक' कहलाता है। जब कोई बार बार खट खट शब्द करता है, तब हम उसे 'खट-खटाना' कहते हैं। जब हमें कोई चीज चम चम करती हुई दिखाई देती है, तब हम उस क्रिया को 'चमकना' कहते हैं। जिस पक्षी को हम पी पी कहते हुए सुनते हैं, उसे हम 'पपीहा' कहते हैं। कौआ काँ काँ या काँव काँव करता है, इसलिए संस्कृतवालों ने उसका नाम काक रख लिया था और अब हम उसे कौआ कहते हैं। लड़-खड़ाना, सड़सड़ाना, दुर्दुराना, ललकारना, लपकना आदि क्रियाएँ और पटाका, सिटकिनी आदि संज्ञाएँ अनुकरणवाचक हैं। ऐसे शब्द किसी क्रिया के अनुकरण पर बने हुए होते हैं। कभी कभी किसी देश या स्थान के नाम पर भी कुछ शब्द गढ़ लिये जाते हैं। जैसे चीन से चीनी, मिस्र से मिस्री और करौली (राजपूताने का एक नगर) से करौली (एक प्रसिद्ध शस्त्र)।

एक और प्रकार के अनुकरणवाचक शब्द होते हैं जो किसी प्र-चलित शब्द के अनुकरण पर बनते हैं। जैसे भीड़-भाड़, धूम-धड़का, खट-पट आदि। इनमें के भाड़, भड़क्का और पट अपने पहले के शब्दों के अनुकरण मात्र हैं। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर किसी पुराने शब्द के अनुकरण पर भी उसी प्रकार का कोई नया शब्द गढ़ लिया जाता है। जैसे मँझला के अनुकरण पर सँझला शब्द गढ़ लिया गया है। कभी कभी बोल-चाल में यों भी किसी शब्द के अनुकरण पर कोई ऐसा शब्द मुँह से निकल जाता है, जिसका कोई अर्थ नहीं

होता। जैसे 'यहाँ पैसा-वैसा कुछ नहीं है।' इसमें का 'वैसा' कुछ अर्थ नहीं रखता। वह पैसा का अनुकरण मात्र है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो अनुकरण-वाचक सब शब्द भी देशज ही के वर्ग में आते हैं। देशज से अलग उनका कोई और प्रकार नहीं है। यदि भेद है तो केवल उनके बनने के प्रकार का। प्रायः इसी वर्ग में वे शब्द भी रक्खे जा सकते हैं जो 'तदर्थीय' कहलाते हैं। चित्रकारी और छापे आदि में एक प्रकार की बेल होती है, जिसे 'गोमूत्रिका' कहते हैं। हिन्दी में इसे 'बरध-मुतान' कहते हैं। इसमें का 'बरध' शब्द सं० बलिवर्द्द के अन्तिम अंश 'वर्द्द' से और 'मुतान' सं० 'मूत्र' से ही निकला है; पर 'बरध-मुतान' शब्द देशज और तदर्थीय है। हमारे यहाँ का 'रजत-पट' संस्कृत का तत्सम होने पर भी अँगरेजी शब्द Silver Screen के अनुकरण पर बना हुआ तदर्थीय शब्द ही है।

इस प्रकार के शब्दों के सिवा हमारी भाषा में एक और प्रकार के शब्द मिलते हैं, जिन्हें कुछ लोग 'विदेशी' कहते हैं, पर एक विशेष कारण से जिन्हें परकीय या पराया कहना अधिक अच्छा होगा। हर भाषा में दूसरी भाषाओं के थोड़-बहुत शब्द होते हैं और हमारी हिन्दी में भी हैं। हमारे यहाँ का 'पिल्ला' शब्द दक्षिण भारत की किसी भाषा से और 'लीची' शब्द चीनी भाषा से आया है। होता यह है कि सभी देशों के लोग दूसरे दूसरे देशों में आते-जाते रहते हैं। और जब दो देशों के लोग आपस में मिलते हैं, तब उनमें काम की चीजों का लेन-देन भी होता है। चीजों के साथ कभी कभी शब्दों का भी कुछ लेन-देन हो जाता है। यही कारण है कि हमारी भाषा में अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली आदि बहुत सी भाषाओं के थोड़े-बहुत शब्द आकर मिल गये हैं। और इधर कुछ दिनों से अँगरेजी शब्द भी बहुत बड़ी संख्या में हमारी भाषा में आ गये हैं। यदि हम तत्सम और तद्भव का मूल और व्यापक अर्थ लें

तो हम कह सकते हैं कि इस प्रकार के परकीय शब्द हमारे यहाँ तत्सम रूप में भी आये हैं और हमने उनके तद्भव रूप भी बना लिये हैं। सवाल, जवाब, कागज, जरूरत, अन्दाज, कैंची, कोट, रेडियो, बल्ब, पेन्सिल, फुट, बूट आदि शब्द परकीय होने पर भी अपने तत्सम रूप में ही हिन्दी में चलते हैं। पर 'सड़क' अरबी के 'शरक' का तद्भव रूप है। 'मिस्तरी' 'मास्टर' का, 'रद्दी' 'रद' का, 'रबड़' 'रबर' का, 'लँगड़ा' 'लंग' का, 'पतलून' 'पैन्टलून' का, 'पलटन' 'प्लैटून' का और 'कोचवान' 'कोचमैन' का तद्भव रूप है। इस रूप में संज्ञाएँ ही नहीं बल्कि कुछ क्रियाएँ और विशेषण आदि भी हमारे यहाँ प्रचलित हैं। जोश से बना हुआ जोशीला, गुजर से बना हुआ गुजरना और नजर से बना हुआ नजराना आदि क्रियाएँ इसके उदाहरण हैं। हमारे यहाँ का 'चपरासी' शब्द फारसी के 'चप व रास्त' (दाहिने-बाएँ खड़े रहनेवाले) से बना है और उस 'चपरासी' से हमने एक अलग शब्द 'चपरास' भी बना लिया है। अँगरेजी रैस्पबेरी (Rasp-berry) से हमने मकोय नामक फल के लिए जो 'रसभरी' शब्द बनाया है, वह तो किसी तरह पराया जान ही नहीं पड़ता।

ऊपर परकीय शब्दों के प्रसंग में हमने फारसी का भी नाम लिया है। आज-कल फारसी भले ही परकीय भाषा कहलाती हो, पर वास्तव में वह भी हमारी संस्कृत की ही एक शाखा या अधिक से अधिक एक प्रकार की प्राकृत है। उसमें के सैकड़ों-हजारों शब्द संस्कृत शब्दों से ही निकले या बने हैं। जैसे शाखा से शाख, अश्व से अस्प, गो से गाव, और बन्ध से बन्द आदि। फारसी का 'सर' शब्द भी उसी प्रकार का तद्भव शब्द है, जिस प्रकार हिन्दी का 'सिर'। 'कलम' हमारे यहाँ संस्कृत में तो है ही; ठीक इसी अर्थ में वह अरबी में भी है। खाली उसका 'क' 'क़' बन गया है। संस्कृत के मातृ, पितृ और

भ्रातृ, फारसी के मादर, बिदर और बिरादर तथा अँगरेजी के मदर, फादर और ब्रदर में इसलिए बहुत ही कम अन्तर है कि इन सब का मूल एक ही है।

इधर कुछ दिनों से हमारे यहाँ बँगला और मराठी आदि के भी कुछ शब्द चलने लगे हैं। सुविधा, बाध्य, संभ्रान्त आदि शब्द यद्यपि देखने में संस्कृत के से जान पड़ते हैं, पर हैं वास्तव में बँगला के देशज शब्द। उपन्यास और प्रतिशब्द आदि हैं तो संस्कृत के शब्द, पर आज-कल वे हिन्दी में जिन अर्थों में चलते हैं, वे अर्थ हमने बँगला से लिये हैं। इसी प्रकार लागू, चालू, प्रगति और आभार आदि शब्द मराठी से हमारे यहाँ आये हैं। इन शब्दों को हम इसलिए 'विदेशी' नहीं कह सकते कि ये हमारे ही देश के दूसरे प्रान्तों के शब्द हैं। इसी लिए ऊपर हमने इस वर्ग के शब्दों को 'परकीय' कहा है।

शब्दों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की कुछ और बातें भी हैं जो उनके अर्थों से सम्बन्ध रखती हैं। पहली बात तो यह है कि सभी भाषाओं में बहुत से शब्द ऐसे रहते हैं जिनके कई कई अर्थ होते हैं। ऐसे शब्द जब तत्सम रूप में लिये जाते हैं, तब यह आवश्यक नहीं होता कि उनके सब अर्थ भी लिये ही जायँ। कभी तो हम उनके सब अर्थ ले लेते हैं और कभी एक ही दो अर्थ लेते हैं। तत्सम शब्दों में कुछ ऐसे भी होते हैं जिनका अर्थ, लिंग या वचन दूसरी भाषा में जाने पर बदल जाता है। कभी कभी ऐसे शब्दों के साथ कुछ नये अर्थ भी जुड़ जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि तद्भव शब्दों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनके वही अर्थ रहें जो उनके मूल शब्दों के हों। हमारे यहाँ का 'कंगाल' शब्द सं० कङ्काल से निकला है, जिसका अर्थ है हड्डियों की ठठरी। इस ठठरी के लिए तो हम कङ्काल शब्द का प्रयोग करते

हैं, पर कंगाल का अर्थ ठठरी नहीं होता, कुछ और ही होता है। 'अग्नि' और 'आत्मा' सं० में पुंलिङ्ग हैं, पर हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग माने जाते हैं। तद्भव शब्दों में हम अपनी आवश्यकता के अनुसार कुछ और अर्थ भी बढ़ा लेते हैं। 'काटना' शब्द सं० कर्त्तन से निकला है। पर 'काटना' हमारे यहाँ जितने अर्थों में चलता है, वे सब अर्थ कर्त्तन के नहीं हैं। 'काटना' का पहला अर्थ है—किसी चीज को बीच से इस तरह अलग कर देना कि उसका कुछ भाग उसमें से निकल जाय। पर जब दूसरे अवसरों पर भी इससे मिलता-जुलता भाव हमें प्रकट करना होता है, तब भी हम 'काटना' का प्रयोग करते हैं। हम जल से तो स्नान करते ही हैं; पर वायु, धूप और वाष्प का भी स्नान होता है। और चन्द्रमा की चाँदनी में पृथ्वी का भी स्नान होता है। मतलब यह कि किसी लिये हुए शब्द में हम अपनी ओर से भी कुछ नये अर्थ और भाव लगा लेते हैं।

तीसरी बात यह है कि जब हम किसी तत्सम शब्द से कोई तद्भव शब्द बनाते हैं, तब वह हमारा हो जाता है और हम अपनी भाषा के नियमों के अनुसार उसके अनेक प्रकार के रूप बना लेते हैं। उदाहरण के लिए 'बनना' शब्द है। हम इससे बनाना, बनवाना, बनवाई, बनाव या बनावट और अनबन आदि अनेक प्रकार के शब्द बना लेते हैं। हम 'बढ़ना' से 'बढ़िया', 'घटना' से 'घाटा' और 'आलू' से 'कचालू' तक बना लेते हैं।

इसके सिवा हम कुछ और प्रकार के शब्द भी बनाते हैं। हम फारसी के 'जेब' में हिन्दी की 'घड़ी' मिलाकर 'जेब घड़ी' बनाते हैं; अँगरेजी के 'रेल' में 'घर' मिलाकर 'रेल-घर' बनाते हैं; हिन्दी के 'राज' में अरबी का 'महल' जोड़कर 'राजमहल' बनाते हैं; हिन्दी की 'चमक' और 'पट्टी' में फारसी का 'दार' प्रत्यय लगाकर 'चमकदार' और 'पट्टीदार' बनाते हैं; अँगरेजी के 'जेल' में फारसी

'खाना' मिलाकर 'जेलखाना' बनाते हैं ; और यहाँ तक कि हिन्दी के 'पता' में अरबी का 'ला' उपसर्ग लगाकर 'ला-पता' भी बना लेते हैं। मतलब यह कि हमारे यहाँ दूसरों से लिये हुए जो शब्द चलते हैं, उन्हें हम आपस में मिलाकर भी और अपने यहाँ के शब्दों के साथ मिलाकर भी कुछ नये शब्द बना लेते हैं। इस प्रकार के शब्द 'यौगिक' कहलाते हैं।

अब तक हमने शब्दों के जो भेद या प्रकार बतलाये हैं, उनके सम्बन्ध में ध्यान रखने की सबसे बड़ी बात यह है कि वे सब भेद या प्रकार अर्थ के विचार से ही होते हैं। हिन्दी में एक बहुत चलता हुआ शब्द 'काम' है। संस्कृत में इसका एक अर्थ कामना या इच्छा भी है और इसी अर्थ के योग से 'कामधेनु' शब्द बना है। इस अर्थ में 'काम' शब्द तत्सम है। पर संस्कृत के 'कर्म' से निकला हुआ 'काम' भी है, जिससे हम 'काम-धन्धा', 'काम-चोर' और 'काम-काजी' आदि शब्द बनाते हैं। इस अर्थ में यह तद्भव है। यही 'काम' शब्द फारसी में भी चलता है, जिससे 'कामयाब' और 'नाकाम' आदि शब्द बनते हैं ; और इसमें भी वही संस्कृत का इच्छावाला भाव या अर्थ है। हमारा काम सं० 'काम' से ही चल जाता है ; इसलिए इस अर्थ में हमें फारसी से केवल 'काम' लेने की आवश्यकता नहीं होती। पर यदि हमें यह शब्द फारसी से इस अर्थ में लेना पड़े, तब वह हमारे लिए परकीय तत्सम हो जायगा।

जब हम 'कल' का प्रयोग 'कल-रव' और 'कल-नाद' सरीखे शब्दों में करते हैं, तब वह तत्सम ही रहता है। पर जब हम उसका प्रयोग 'आनेवाला दिन' के अर्थ में करते हैं, तब वह संस्कृत 'कल्य' से निकला हुआ होने के कारण और यन्त्र के अर्थ में सं० 'कला' से निकला हुआ होने के कारण तद्भव होता है। पर हमारे यहाँ 'कल-मुँहा' और 'कलजिब्भा' आदि शब्द भी प्रचलित हैं। इन शब्दों में

'कल' न तो तत्सम ही है न तद्भव। वह हिन्दी के तद्भव 'काला' शब्द का संक्षिप्त रूप मात्र है। 'रास' शब्द कृष्ण और गोपियों के नृत्य के अर्थ में तत्सम होता है और 'ढेर' के अर्थ में सं० राशि से निकला हुआ होने के कारण तद्भव होता है। पर जब हम उसका प्रयोग 'लगाम' के अर्थ में करते हैं, तब वह अरबी से ज्यों का त्यों लिया हुआ होने के कारण परकीय तत्सम होता है। पर कभी-कभी हम यह भी कहते हैं—'यह बात हमें रास नहीं आती।' अर्थात्—अनुकूल नहीं पड़ती। इस अर्थ में यह फारसी के 'रास्त' शब्द से निकला हुआ होने के कारण परकीय तद्भव होता है। इन सब बातों का यही अभिप्राय है कि किसी शब्द का भेद या प्रकार उसके रूप से नहीं, बल्कि उसके अर्थ से निश्चित होता है।

२

शब्दों के रूप

बोलने या लिखने के समय शब्दों के ठीक ठीक रूप का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि हम मनमाने ढंग से शब्दों के रूप बना-बनाकर बोलने या लिखने लगें तो हमारी बात जल्दी दूसरों की समझ में ही न आवेगी। हर चीज का एक ऐसा स्थिर रूप होता है, जिसे सब लोग जानते और मानते हैं। ऐसे रूप को हम 'मानक' कह सकते हैं। मानक वही चीज है, जिसे कुछ लोग मान-दण्ड या माप-दण्ड कहते हैं। 'मानक' इन्हीं शब्दों का सीधा-सादा, सहज और हलका रूप है। जो चीज अपने मानक से गिरी हुई होती है, उसका कहीं मान नहीं होता।

बहुत से लोग आए, गए, लिए, दिए आदि लिखते हैं; और बहुत से लोग आये, गये, लिये, दिये आदि लिखते हैं। पर अधिक शिष्ट रूप आये, गये, आदि ही माने जाते हैं। इनमें से 'लिए' और 'लिये' के सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि 'वास्ते' के अर्थ में तो 'लिए' लिखा जाना चाहिए; और क्रिया के रूप में 'लिये' लिखा जाना चाहिए। नहीं तो किसी अवसर पर पढ़नेवालों को भ्रम हो सकता है। होना चाहिए—'हम आपके लिए इतनी दूर से चलकर आये हैं।' और 'हमने आज कई नये ग्रन्थ लिये हैं।'

चाहिये, कीजिये, दीजिये और लीजिये आदि से चाहिए, कीजिए दीजिए और लीजिए आदि रूप ही हिन्दी में अधिक अच्छे समझे जाते हैं। ये रूप लिखाई और छापे आदि में भी सहज होते हैं और उच्चारण से भी बहुत कुछ मिलते-जुलते होते हैं।

लिखने से पहले शब्दों के मानक रूप अच्छी तरह समझ लेने चाहिएँ और तब उन्हें उन्हीं रूपों में लिखना चाहिए। कहीं 'पावे', कहीं 'पाये', कहीं 'पावै', और कहीं 'पाए' नहीं लिखना चाहिए। भूत और वर्त्तमान काल में 'पाये' और भविष्यत् काल में (विशेषतः 'गा' के साथ) 'पावे' रूप ही हिन्दी में मानक माना जाता है। जैसे— 'हमने सौ रुपये पाये थे (या हैं)।' और 'वह सौ रुपये पावेगा।' 'लिए गये' या 'लिये गए' आदि भी लिखना ठीक नहीं है, क्योंकि इनमें से एक शब्द 'ए' से और दूसरा 'ये' से लिखा गया है। 'लिये गये' लिखना ही ठीक है। 'होवें', 'लेवें', 'देवें' आदि से 'हों', 'लें', 'दें' आदि सुगम भी हैं और सुन्दर भी। जायगा, जावेगा, जाएगा आदि रूपों में से 'जायगा' ही अधिक प्रचलित और अच्छा है। पर 'आयगा' या 'आएगा' ठीक नहीं है, 'आवेगा' ही ठीक है। तात्पर्य यह कि शब्दों की अक्षरी या हिज्जे सदा ठीक और एक-सी होनी चाहिए। कहीं 'कुँअर' और कहीं 'कुँवर', कहीं 'रिआयत' और कहीं 'रियायत', कहीं 'हलुआ' और कहीं 'हलुवा' नहीं लिखना चाहिए। शब्द का रूप सदा स्थिर रखना चाहिए ;

साधारणतः हिन्दी भाषा के दो रूप माने जाते हैं—एक पश्चिमी और दूसरा पूर्वी। कुछ कारणों से शब्दों के प्रायः पश्चिमी रूप और शब्द ही अधिक अच्छे माने जाते हैं ; और हिन्दी में अधिकतर वही चलते भी हैं। जैसे चिल्लाना, सोना, हेराना आदि पश्चिमी रूप और शब्द हैं और चिचियाना, सूतना, खोना कपार आदि पूर्वी। यदि हम कहें—'हम चिचियाते रहे' और 'तुम सूतते रहे' तो यह

अच्छी हिन्दी नहीं होगी। अच्छी हिन्दी तभी होगी, जब हम कहेंगे— 'हम चिल्लाते रहे' और 'तुम सोते रहे'। 'हम चौंतरे से नीचे फेंका गये।' सुनकर लोग हँसेंगे। इसलिए 'गिर गये' रखना ही ठीक होगा। 'कड़हिया', 'छँटैया' आदि रूप पूर्वी और 'कड़ाही', 'छँटाई' आदि रूप पश्चिमी हैं। और हिन्दी में यही पश्चिमी रूप ठीक माने जाते हैं।

पर यह बात नहीं है कि सब जगह पश्चिमी रूप ही ठीक माने जाते हों। पश्चिम के कुछ प्रयोग ऐसे भी हैं जो हिन्दी में ठीक नहीं माने जाते। पश्चिमी रूप 'खैंचना' और 'घड़ना' हिन्दी में नहीं चलते, पूर्वी रूप 'खींचना' और 'गढ़ना' ही चलते हैं। पश्चिम में प्रायः 'दीखना' बोलते हैं, पर हिन्दी में उसकी जगह 'दिखाई देना' ही अच्छा माना जाता है। पश्चिम में और मुख्यतः उर्दू में 'भूक', 'धोका' और 'सर' आदि रूप चलते हैं; पर हिन्दी में 'भूख', 'धोखा' और 'सिर' ही ठीक माने जाते हैं।

इन सब बातों का आशय यही है कि हिन्दी का अपना एक अलग रूप है, जिसमें बहुत सी बातें पश्चिम से और कुछ बातें पूरब से भी ली गई हैं। पर हिन्दी का प्रचार सारे भारत में है और सभी प्रान्तों के लोग हिन्दी लिखते और बोलते हैं। इसलिए प्रायः लोग अपने प्रान्त के या अपने यहाँ के आस-पास बोली जानेवाली भाषाओं के कुछ प्रयोग भी हिन्दी में मिला देते हैं। मध्य प्रदेश में 'दिखाना' या 'दिखलाना' की जगह 'बताना' या 'बतलाना' बोलते हैं। जैसे— 'जरा अपनी पुस्तक मुझे भी बतलाओ।' (दिखलाओ के अर्थ में) दिल्ली और मेरठ आदि की ओर 'चुनना' की जगह 'चिनना' बोलते हैं। कुछ स्थानों में 'चाहिए था' की जगह 'चाहता था' बोलते हैं। जैसे—'आपको वहाँ नहीं जाना चाहता था।' बिहारवाले बोलते हैं—'हम सोचे।' 'हम कहे।' आदि। बंगालियों से सम्बन्ध रखने-

वाले लोग बोलते हैं—'हम जायगा।' 'आप आवेगा।' आदि। इस प्रकार के सब प्रयोग स्थानिक होते हैं और अच्छी हिन्दी में नहीं चलते।

आज-कल हिन्दी में संस्कृत के कुछ शब्द अशुद्ध रूप में चलने लगे हैं। कभी कभी लोग संस्कृत शब्दों के ठीक रूप न जानने के कारण मनमाने रूप में लिखने लगते हैं और उनकी देखा-देखी और भी बहुत-से लोग वे रूप ग्रहण कर लेते हैं। इससे कई प्रकार की हानियाँ होती हैं। भाषा का रूप बिगड़ता है, लेखक का अज्ञान प्रकट होता है, दूसरों को हँसने का अवसर मिलता है, आदि। इसलिए जो कुछ लिखा जाय, उसका ठीक रूप पहले से समझ लेना बहुत अच्छा है। बिना अच्छी तरह समझे या केवल दूसरों की देखा-देखी अशुद्ध या भद्दे शब्दों का प्रयोग करना ठीक नहीं है। यहाँ हम कुछ ऐसे शब्द देते हैं जो हिन्दी में अशुद्ध रूप में चल पड़े हैं; और उनके सामने उनके शुद्ध रूप भी देते हैं। इनमें से अशुद्ध रूप छोड़ देने चाहिएँ और सदा शुद्ध रूपों का ही प्रयोग करना चाहिए।

अशुद्ध	शुद्ध
आधीन	अधीन
एकत्रित	एकत्र
सुगन्धि	सुगन्ध
दुर्गन्धि	दुर्गन्ध
श्राप	शाप
नर्क	नरक
वादाविवाद	वाद-विवाद
प्रश्रय	आश्रय
दुरावस्था	दुरवस्था
परिणित	परिणत

सिंचन	सेचन
सिंचित	सिक्त
सृजन	सर्जन
जागृत	जागरित
जागृति	जागर्त्ति आदि ।

बहुत से लोग संस्कृत संज्ञाओं से मनमाने ढंग से विशेषण भी बना लेते हैं। वे न तो संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप जानते हैं, न नये शब्द बनाने के नियम। वे नहीं जानते कि 'क्रोध' से 'क्रुद्ध', 'कोप' से 'कुपित' 'क्षोभ' से 'क्षुब्ध', 'आकर्षण' से 'आकृष्ट', 'आदर' से 'आहत', 'आचरण' से 'आचरित', 'उद्देश्य' से 'उद्दिष्ट' आदि रूप बनते हैं। वे इनकी जगह क्रोधित, कोपित, क्षोभित, आकर्षित, आदरित, आचरणित और उद्देशित सरीखे अशुद्ध रूप बना लेते हैं और उन्हीं का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग हिन्दी 'उमंग' से 'उमंगित' 'अचंभा' से 'अचंभित' और 'सुधार' से 'सुधारित' भी बना लेते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है।

बहुत से लोग हिन्दी शब्दों में संस्कृत के प्रत्यय जोड़कर या संस्कृत के दूसरे नियमों के अनुसार अपने मन से नई नई भाववाचक संज्ञाएँ बना लेते हैं। जैसे—उजड्ड, थिर, सुघर और कट्टर आदि शब्द हैं तो तद्भव और हिन्दी के; पर कुछ लोग इनमें भी संस्कृत का 'ता' प्रत्यय लगाकर 'उजड्डता' 'थिरता', 'सुघरता' और 'कट्टरता' आदि और 'अपना' में 'त्व' प्रत्यय लगाकर, 'अपनत्व' सरीखे शब्द बना लेते हैं। 'लाल' फारसी का और 'हरा' हिन्दी का शब्द है। पर कुछ लोग इनसे 'लालिमा' और 'हरीतिमा' आदि शब्द बना लेते हैं। 'महान्' से जो भाववाचक संज्ञा बनती है, उसका रूप होता है महत्ता। पर यह बात न जानने और शब्द को भूल से 'महान' समझने के कारण कुछ लोग 'महानता' लिखते हैं, जो अशुद्ध है।

कभी कभी लोग भाववाचक संज्ञाओं में अपनी ओर से एक और प्रत्यय लगाकर उनका रूप बिगाड़ देते हैं। 'एकता' और 'ऐक्य' अर्थ के विचार से एक हैं, पर कुछ लोग लिखते हैं 'ऐक्यता'। होना चाहिए या तो 'सफलता' या 'साफल्य', पर कुछ लोग लिखते हैं 'साफल्यता'; और 'वैमनस्य' की जगह 'वैमनस्यता' लिखते हैं। इस प्रकार के दोषों से विद्यार्थियों को सदा बचना चाहिए।

कुछ लोग कई प्रकार के शब्दों को आपस में मिलाकर नये यौगिक शब्द बना लेते हैं। एक शब्द हिन्दी का और एक संस्कृत या फारसी का अथवा एक शब्द संस्कृत का और दूसरा हिन्दी या फारसी का लेकर किसी एक भाषा के नियम के अनुसार उनसे यौगिक शब्द बना लेना ठीक नहीं है। हमारे यहाँ पहले से कुछ ऐसे यौगिक चले आ रहे हैं, जिनका आधा एक भाषा का है और आधा दूसरी भाषा का । जैसे हिन्दी 'समझ' में फारसी का 'दार' प्रत्यय लगाकर 'समझदार' और फारसी के 'गरम' शब्द में हिन्दी का 'आहट' प्रत्यय लगाकर 'गरमाहट' शब्द बना लिया गया है। फारसी के 'खर्च' शब्द में हिन्दी का 'ईला' प्रत्यय लगाकर 'खरचीला' विशेषण और उसमें भी 'पन' प्रत्यय लगाकर भाववाचक संज्ञा 'खर-चीलापन' बना ली गई है। पर एक तो ऐसे शब्द बहुत थोड़े हैं, और दूसरे वे कुछ समझ-बूझकर बनाये गये हैं। तिस पर बहुत दिनों से प्रचलित रहने के कारण वे अच्छी तरह मँज गये हैं। पर यदि उन शब्दों की देखा-देखी हम नित्य नये शब्द गढ़ते रहेंगे तो हमारी भाषा का रूप इतना बिगड़ जायगा कि वह जल्दी समझ में आने योग्य ही न रह जायगी और दूसरे लोग उसे देखकर हँसेंगे। 'बरस-गाँठ' हिन्दी का शब्द है। अब यदि हम इसमें संस्कृत का 'उत्सव' शब्द मिलाकर 'बरस-गाँठोत्सव' बना लें तो वह भद्दा ही होगा। कुछ लोग 'कुछ' और 'एक' को मिलकर 'कुछेक' या 'हर'

और 'एक' को मिलाकर 'हरेक' लिखते हैं जो ठीक नहीं है। हिन्दी के 'अछूत' शब्द में कुछ लोगों ने संस्कृत का 'उद्धार' शब्द जोड़कर 'अछूतोद्धार' शब्द बना लिया है, जो आज-कल खूब चल गया है। 'मंजूरी-पत्र', 'सजा-प्राप्त', 'नमूनार्थ' और 'जाँचकर्त्ता' आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं जो बिना समझे-बूझे बनाने गये हैं और जिनका प्रयोग भी लोग दूसरों की देखा-देखी बिना समझे-बूझे करते हैं। यदि सब लोग इसी प्रकार अपने मन से नये शब्द बनाने लगेंगे तो भाषा की दुर्दशा हो जायगी। इसलिए विद्यार्थियों को इस प्रकार के नये शब्द बनाने के फेर में नहीं पड़ना चाहिए; और पहले से बने हुए शब्दों का भी अच्छी तरह सोच-समझकर ही प्रयोग करना चाहिए।

बहुत-से लोग अरबी-फारसी आदि के शब्दों के रूप भी मनमाने और अशुद्ध रूप में और प्रायः अशुद्ध अर्थ में लिख जाते हैं। कुछ लोग उर्दूवालों की देखा-देखी 'बरात' और 'चलान' की जगह 'बारात' और 'चालान' लिख देते हैं। कुछ लोग विदेशी शब्दों को संस्कृत रूप देना चाहते हैं। ऐसे लोग 'कार्रवाई' की जगह 'कार्यवाही' शब्द का प्रयोग करते हैं; और इस बात का विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते कि इन दोनों शब्दों के अर्थ एक दूसरे से कितने दूर जा पड़ते हैं। 'कार्यवाही' का सीधा-सादा अर्थ होगा—कार्य (या उसका भार) वहन करनेवाला और इस अर्थ का 'कार्रवाई' से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसा नहीं करना चाहिए। लिखने से पहले सदा अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिए। और यदि अपनी समझ में न आवे तो किसी बड़े से पूछ लेना चाहिए। किसी से पूछ लेना बुरा नहीं है; बुरा है बिना समझे-बूझे अशुद्ध लिखना।

३

शब्दों के अर्थ

हम जो कुछ कहते या लिखते हैं, वह इसी लिए कि सुनने या पढ़नेवाले हमारे मन का भाव समझ लें। यदि हमारी बात का भाव या अर्थ किसी की समझ में न आवे, तो हमारा बोलना या लिखना व्यर्थ होता है। 'व्यर्थ' कहते ही उसे हैं, जिसका कुछ भी अर्थ न हो। इसलिए हम जो कुछ कहें या लिखें, वह ऐसा होना चाहिए कि उसका ठीक ठीक अर्थ निकले और सब की समझ में आवे। इसलिए बोलते या लिखते समय अर्थ पर ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

अर्थ के विचार से हमें बहुत सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। पहली बात यह है कि अर्थ बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। हमारी बात का अर्थ समझने के लिए किसी को कोई विशेष प्रयत्न न करना पड़े। इसके लिए हमारे वाक्य की बनावट बिलकुल सीधी होनी चाहिए। हम जो कुछ कहें या लिखें, वह बिलकुल सीधे ढंग से। उसमें किसी तरह का हेर-फेर, घुमाव-फिराव या बल-पेच नहीं होना चाहिए। यदि हम कहें—'आपके मन में किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न हो।' तो यह कहने का एक सुन्दर ढंग अवश्य है, पर इसमें कुछ घुमाव-फिराव या बल-पेच अवश्य है। यह बात बिलकुल

सीधी तरह से इस प्रकार कही जा सकती है—'आपको किसी प्रकार का भ्रम न हो।' 'उसने लाल रंग के पुष्प का विक्रय किया।' कहने से उसने 'लाल रंग का फूल बेचा।' कहना अधिक सीधा और सहज है। ऐसे कुछ और वाक्य लीजिए—

१. इस काम में सरकार किसी प्रकार की हिचक न करेगी।
२. तुम्हारा साहस तो कम नहीं दिखाई देता।
३. बहुत से लोग इस धारणा के बन गये हैं।
४. मैंने उनसे वार्त्ता की।

ये सब बातें बिना किसी घुमाव-फिराव के सीधी तरह से नीचे लिखे रूपों में कही जा सकती हैं—

१. इस काम में सरकार को कोई हिचक न होगी।
२. तुम्हारा साहस तो कम नहीं है।
३. बहुत से लोगों की यह धारणा हो गई है।
४. मैंने उनसे बातें कीं।

यह ठीक है कि कुछ अवसरों पर अधिक प्रभाव डालने के लिए कुछ बातें विशेष ढंग से कहनी पड़ती हैं। पर ऐसे ढंग धीरे धीरे अभ्यास करने से ही आते हैं। आरम्भ में तो विद्यार्थियों को सब बातें बिलकुल सीधी तरह से कहने और लिखने का ही अभ्यास करना चाहिए। कुछ घुमाव-फिराव से कहने या अधिक प्रभाव डालने के ढंग का समय तो बाद में आता है। विद्यार्थियों को उचित है कि पहले सहज शब्दों में और सीधे ढंग से अपने मन के भाव प्रकट करने का अच्छी तरह अभ्यास कर लें; तब कठिन शब्दों और जटिल प्रयोगों की ओर बढ़ें। इससे सहज में लिखने का अच्छा अभ्यास हो सकेगा।

अर्थ के विचार से ध्यान रखने की दूसरी बात यह है कि हमारे वाक्यों में एक ही अर्थ या भाव प्रकट करनेवाले एक की जगह दो शब्द न आने पावें। जैसे 'उन्होंने अपनी कविता स्वयं आप पढ़कर सुनाई थी।' इसमें 'स्वयं' और 'आप' दो शब्द साथ ही साथ आये हैं, जिनका अर्थ एक ही है। इसलिए इसमें 'स्वयं' व्यर्थ है। 'वे अपनी चतुरता और चालाकी से सबको प्रसन्न रखते हैं।' में 'चतुरता' और 'चालाकी' एक चीज हैं, इसलिए दोनों में से किसी एक शब्द का प्रयोग होना चाहिए। 'सिवा आपको छोड़कर कोई ऐसी बात नहीं कहता।' में 'सिवा' और 'छोड़कर', 'सारे देश भर में यह बात फैल गई।' में 'सारे' और 'भर', 'उसके मन की थाह का पता नहीं चलता था।' में 'थाह' और 'पता', एक ही अर्थ रखते हैं, इसलिए ये सब वाक्य अर्थ की दृष्टि से ठीक नहीं हैं। 'आप अपनी ताकत के बल पर यह काम करना चाहते हैं।' में 'ताक़त' यद्यपि किसी और अर्थ में और 'बल' किसी और अर्थ में आया है, फिर भी दोनों शब्दों के अर्थ बहुत कुछ एक हैं, इसलिए वाक्य कुछ भद्दा जान पड़ता है। 'लेकिन (या पर) फिर भी मैं आपकी बात मान लूँगा।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि जो अर्थ 'लेकिन (या पर)' का है, बहुत कुछ वही 'फिर भी' का भी है। 'उन्हें व्यर्थ रुपये देने से कोई लाभ नहीं।' में 'व्यर्थ' और 'कोई लाभ नहीं' दोनों एक भाव के सूचक हैं। इसलिए या तो होना चाहिए— 'उन्हें रुपये देने से कोई लाभ नहीं।' या 'उन्हें रुपये देना व्यर्थ है।' 'इसके बाद फिर यह हुआ कि……।' में 'फिर' का भी वही अर्थ है, जो 'इसके बाद' का है। इसलिए या तो होना चाहिए—'इसके बाद यह हुआ कि……।' या 'फिर यह हुआ कि……।' 'थोड़ी देर बाद वे वापस लौट आये।' में 'वापस' का भी वही अर्थ है जो 'लौटने' का है। इसलिए होना चाहिए—'इसके बाद वे लौट आए।' या 'इसके बाद

वे वापस आए।' पर हमारी भाषा में पहले से 'लड़ाई-झगड़ा', 'धन-दौलत', 'मार-पीट' और 'पान-पत्ता' सरीखे जो कुछ बँधे हुए यौगिक शब्द चले आ रहे हैं और जो 'बोल-चाल' के अन्तर्गत हैं, उनके सम्बन्ध में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

तीसरे, अर्थ की दृष्टि से इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वाक्य में शब्द एक ही मेल के आवें। ऐसा नहीं होना चाहिए कि आरम्भ में तो ऐसे शब्द आवें, जिनका अर्थ कुछ और हो और अन्त में ऐसे शब्द आवें, जिनका पहले के शब्दों से कोई मेल न बैठे। जैसे—'हिन्दी की ऐसी खिचड़ी बन जायगी जो किसी की समझ में न आवेगी।' पर 'खिचड़ी' समझ में आने की चीज नहीं है। हम अधिक से अधिक यह कह सकते हैं—'हिन्दी की ऐसी खिचड़ी बन जायगी जो किसी काम की न होगी।' या 'ऐसी खिचड़ी हिन्दी बन जायगी जिससे हमारा काम न चलेगा।' आदि। इसी प्रकार 'इस समस्या की बहुत अच्छी दवा उनके पास है।' कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि 'समस्या' की या तो मीमांसा होती है या निराकरण। दवा तो रोग की होती है। 'कलकत्ते में जाली नोटों की टकसाल पकड़ी गई।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि नोट प्रेसों में छपते हैं, टकसालों में छपते, ढलते या बनते नहीं हैं। टकसालों में तो सिक्के ढलते हैं। 'अँगरेजों ने वहाँ हत्या और धोखेबाजी का खूब प्रयोग किया।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'धोखेबाजी' के साथ तो 'प्रयोग' शब्द जैसे-तैसे चल भी सकता है, पर 'हत्या का प्रयोग किया।' का कुछ भी अर्थ नहीं होता।

चौथे, अर्थ की दृष्टि से वाक्य कभी अधूरे नहीं होने चाहिएँ। 'देश की जितनी दुर्दशा हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी।' अधूरा वाक्य है। इस वाक्य के पहले अंश में 'आज-कल' या 'इस समय' होना चाहिए। 'संस्कृत में जो स्थान वाल्मीकि के रामायण

का है, वही तुलसीकृत रामायण का है।' भी अधूरा वाक्य है। होना चाहिए—'वही हिन्दी में तुलसीकृत रामायण का है।' 'तुम्हारे भाई ने कल घर पर जो किया था, वही तुम भी कर रहे हो।' का अन्तिम वाक्यांश होना चाहिए—'वही आज तुम भी यहाँ कर रहे हो।'

वाक्य ऐसा होना चाहिए जिसका एक ही और स्पष्ट अर्थ हो। ऐसा न हो कि सीधे-सादे या स्पष्ट अर्थ के सिवा उसका कुछ और अर्थ भी निकल सके और सुनने या पढ़नेवालों को कुछ भ्रम हो। 'प्रधान अध्यापक लड़के चुनेंगे।' कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि चुनने का काम प्रधान अध्यापक करेंगे या लड़के। वाक्य का यह भी अर्थ हो सकता है कि प्रधान अध्यापक कुछ लड़कों को चुनेंगे, और यह अर्थ भी हो सकता है कि सब लड़के मिलकर अपने लिए एक प्रधान अध्यापक चुनेंगे। 'अमेरिका भारत को जर्मनी से दूना अन्न देगा।' से यह स्पष्ट नहीं होता कि अमेरिका जितना अन्न जर्मनी को देगा, उससे दूना; या जर्मनी भारत को जितना अन्न देगा, उससे दूना। दूसरे महायुद्ध के समय एक ऐसा अवसर आया था, जब युरोप में भी और एशिया में भी बहुत बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ छिड़ने के लक्षण दिखाई देते थे। उस समय एक समाचारपत्र में छपा था—'युरोप और एशिया में बहुत बड़ा युद्ध होगा।' इस वाक्य से असल बात का तो पता चलता नहीं था; हाँ ऐसा जान पड़ता था कि एक तरफ युरोपवाले होंगे और दूसरी तरफ एशियावाले: और दोनों आपस में बहुत बड़ा युद्ध करेंगे। इसलिए ऐसे वाक्य नहीं लिखने चाहिएँ।

कभी कभी वाक्य में कोई ऐसा शब्द आ जाता है, जिसके दो या अधिक अर्थ होते हैं; और उस शब्द के कारण ही वाक्य का कुछ का कुछ अर्थ लग सकता है। 'हल' लकड़ी के उस औजार को भी कहते हैं, जिससे खेत जोते जाते हैं, और किसी प्रश्न के निपटारे (के उपाय या ढंग) को भी कहते हैं। यदि किसी बड़े प्रश्न पर

विचार हो रहा हो और उसे सुलझाने के उपाय सोचे जा रहे हों, और बीच में कोई कह बैठे—"मैं हल की तलाश में हूँ।' तो सुनने वाले चक्कर में पड़ सकते हैं। 'मैं हल की तलाश में हूँ।' का सीधा-सादा अर्थ तो यही होगा कि मैं जमीन जोतने का हल ढूंढ रहा हूँ। इसलिए कहना चाहिए—'मैं इस सवाल के हल की तलाश में हूँ।'

'उस जमाने में जब अँगरेजों को फाँसी पर लटकाना होता था, तब न्याय का ध्यान नहीं रक्खा जाता था।' भी एक और प्रकार का ऐसा वाक्य है जिससे भ्रम हो सकता है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि यह उस समय की बात है, जब अँगरेज लोग दूसरों को फाँसी पर लटकाना चाहते थे ; या उस समय की बात है, जब लोग अँगरेजों को फाँसी पर लटकाना चाहते थे। जिस प्रसंग में यह वाक्य हमारे देखने में आया था, उससे तो यह अवश्य स्पष्ट होता था कि जब अँगरेज लोग भारतवासियों को फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे, तब वे न्याय का ध्यान नहीं रखते थे। पर वाक्य की बनावट से इसका उलटा अर्थ भी निकल सकता है। इसलिए इस वाक्य में दोष है।

अर्थ की दृष्टि से इस बात का भी विचार करना पड़ता है कि वाक्य के सब अंगों की आपस में ठीक ठीक संगति बैठे। यह कहना—'आज तुमने अपनी नई चालाकी का नया नमूना दिखलाया है।' अर्थ के विचार से ठीक नहीं है। नई चीज या बात का नमूना सदा नया ही होगा; हाँ पुरानी चीज या बात का नया नमूना हो सकता है। इसलिए या तो होगा—'नई चालाकी का नमूना' या 'चालाकी का नया नमूना।' 'यह चीज सपने में मिलना दुर्लभ है।' कहना भी ठीक नहीं है। या तो होना चाहिए—'यह चीज सपने में भी नहीं मिल सकती।' या 'यह दुर्लभ है।' यदि हम कहें—'यह इस

बात का प्रमाण है कि आपका वहाँ जाना आवश्यक है।' तो इस वाक्य में अर्थ की संगति नहीं बैठती। कारण यह है कि 'प्रमाण' सदा ऐसी बात का होता है, जो या तो हो चुकी हो या जिसे कुछ लोग ठीक मान चुके हों। जो बात अभी होने को हो या आनेवाली हो, उसके सम्बन्ध में 'प्रमाण' शब्द का प्रयोग करना ठीक नहीं है। यह कहना तो ठीक है—'यह इस बात का प्रमाण है कि आप वहाँ गये थे।' पर यह कहना ठीक नहीं है—'यह इस बात का प्रमाण है कि आप वहाँ जानेवाले हैं।' या 'आपका वहाँ जाना आवश्यक है।' यह ठीक है कि संस्कृत में 'प्रमाण' के बहुत से अर्थों में एक अर्थ लक्षण या चिह्न भी है। पर उसका मुख्य और पहला अर्थ 'सबूत' ही है ; और ऊपर के वाक्य में सबसे पहले उसी अर्थ पर ध्यान जाता है। इसलिए ऐसे वाक्यों में 'प्रमाण' का प्रयोग ठीक नहीं है।

वाक्य ऐसा होना चाहिए, जिसमें दो विरोधी बातें न हों। जैसे—'तब शायद यह काम जरूर हो जायगा।' इसमें 'शायद' और 'जरूर' दो विरोधी शब्द हैं। 'शायद' के साथ 'जरूर' या 'जरूर' के साथ 'शायद' नहीं चल सकता। 'प्रायः ऐसे अवसर आते हैं, जिनमें लोगों को कभी कभी अपना मत बदलना पड़ता है।' में 'प्रायः' और 'कभी कभी' दो विरोधी बातें हैं। 'वे इस विषय में बिलकुल चुप हैं, और कहते हैं कि हम इस झगड़े में नहीं पड़ेंगे।' में 'बिलकुल चुप हैं' और 'कहते हैं' दो विरोधी बातें हैं। 'मार्ग की गरम धूल से थका हुआ साँप टेढ़ा-मेढ़ा चलता हुआ फुफकार रहा है और मोर की छाया में कुंडल मारे बैठा है।' में 'चलता हुआ' और 'बैठा है' दो विरोधी भाव तो हैं ही, 'गरम धूल से थका हुआ' भी इसलिए ठीक नहीं है कि गरम धूल थकाती नहीं, बल्कि जलाती या तपाती है।

कभी कभी इस तरह की विरोधी बातों के कारण वाक्य ऐसा हो जाता है कि उसका कुछ अर्थ ही नहीं निकलता। जैसे—'यदि

यह जाति गुलाम न होती तो अब तक कभी की स्वतन्त्र हो चुकी होती।' इसका सीधा सादा अर्थ यह है कि यह जाति गुलाम होने के कारण ही अब तक स्वतन्त्र नहीं हो सकी है। लेकिन इस तरह की बात कहना भी वैसा ही है, जैसा यह कहना—'यदि हम सोये न होते तो जागते होते।' या 'यदि हम खा न लेते तो भूखे रहते।'

अर्थ का बहुत बड़ा सम्बन्ध वाक्य की बनावट से होता है। और इस सम्बन्ध की कुछ बातें आगे 'वाक्यों की बनावट' वाले प्रकरण में बतलाई गई हैं। यहाँ हम यही बतलाना चाहते हैं कि हम एक ही बात कई तरह से कह सकते हैं; पर हर तरह से कही हुई बात का अर्थ भी कुछ अलग तरह का हो सकता है। यदि हम कहें—'इसमें एक काम और बढ़ जाता है।' तो इसका यह मतलब होता है कि वह काम बढ़ने से हम कुछ घबराते हैं या उसे व्यर्थ का काम समझते हैं। पर यदि हम कहें—'इसमें एक ही काम तो और बढ़ता है।' तो इसका मतलब होगा कि वह बढ़नेवाला काम हमारी दृष्टि में कोई बहुत बड़ा काम नहीं है। इस प्रकार हमारे वाक्य की बनावट से ही सुनने या पढ़नेवाले समझ लेते हैं कि वह काम हमारी दृष्टि में बड़ा है या छोटा।

कभी कभी बहुत ही थोड़े अन्तर के कारण वाक्य के अर्थ में भी बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है। जैसे 'मैं समझता हूँ, आप वहाँ जायँगे।' और—'मैं समझता हूँ कि आप वहाँ जायँगे।' दूसरे वाक्य में केवल 'कि' बढ़ने के कारण उसका अर्थ कुछ बदल गया है। पहले वाक्य का अर्थ यह है कि बोलनेवाला जो कुछ कह रहा है, पूरी दृढ़ता से कह रहा है—उसके कहने में निश्चय का भाव है। अर्थात् बोलनेवाला जो कुछ कह रहा है, उसकी सत्यता में उसे कुछ भी सन्देह नहीं है। पर दूसरे वाक्य में केवल 'कि' लग जाने के कारण वह निश्चय या दृढ़ता नहीं रह गई है; वह बिलकुल साधारण

बात हो गई है। इसमें बोलनेवाला अपना एक साधारण विचार, बिना किसी निश्चय या जोर के, बिलकुल सामान्य रूप में कह रहा है।

शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में ध्यान रखने की दो बातें और हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि हम कहीं से कोई शब्द लेते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार उसके अर्थ घटा-बढ़ा लेते हैं। उदाहरण के लिए 'दौड़ना' शब्द है। इसका सीधा-सादा और मुख्य अर्थ है—बहुत जल्दी जल्दी और बड़े बड़े डग बढ़ाते हुए आगे की ओर चलना। हम स्वयं तो अपने पैरों से दौड़ते ही हैं, पर हम यह भी कहते हैं—'रेल दौड़ती है।' और 'मोटर दौड़ा दो।' रेल या मोटर के पैर तो होते ही नहीं; फिर भी उनके सम्बन्ध में हम 'दौड़ना' का प्रयोग करते हैं। यही नहीं, हमारी आँखें भी दौड़ती हैं और मन भी दौड़ता है। ऐसे अवसरों पर 'दौड़ना' का प्रयोग करते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि आँखों या मन के न पैर होते हैं, न पहिए। जब इस प्रकार अर्थ के क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए हम कुछ और दूर पहुँचते हैं, तब हम देखते हैं कि कुछ शब्दों के साधारण से भिन्न और बिलकुल नये या स्वतन्त्र अर्थ भी बन जाते हैं। बस यहीं से मुहावरों का क्षेत्र चलता है। हम कहते हैं—'आज-कल रिश्वत का बाजार गरम है।' और 'उनका सारा जोश ठण्ढा हो गया।' यहाँ 'गरम' होने और 'ठण्ढे' होने का कुछ और ही अर्थ हो जाता है, जो गरमी या ठण्ढक से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। हम कहते हैं—'तुमने हमारे सारे परिश्रम पर पानी फेर दिया।' और 'उनकी आशाओं पर पानी फिर गया।' वास्तव में ऐसे अवसरों पर न तो परिश्रम या आशाओं से पानी का कोई सम्बन्ध या संयोग होता है और न साधारण अवस्था में 'पानी फिरना' का कोई अर्थ होता है। 'पानी फिरना' एक विशेष प्रकार का प्रयोग है और उसमें एक ऐसा विशेष अर्थ है, जो न तो

'पानी' के साधारण अर्थ से सम्बन्ध रखता है,न 'फिरना' से जिसका कोई लगाव है। चाहे किसी की नानी दस-बीस बरस पहले ही क्यों न मर चुकी हो, पर हम आज भी बात पड़ने पर कहते हैं—'यह सुनते ही उसकी नानी मर गई।' हम इस बात का विचार नहीं करते कि उसकी नानी बहुत पहले मर चुकी है या अभी तक जीती है। पर 'नानी मरना' में हमने एक विशेष अर्थ लगा लिया है। और जब हमें वह अर्थ या भाव सूचित करना होता है, तब हम 'नानी मरना' का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार जब हम कहते हैं—'वह सिर पर पैर रखकर भागा।' तब हम यह नहीं सोचते कि आदमी अपने सिर पर अपने पैर कैसे रख सकता है। और यदि मान लिया जाय कि वह किसी प्रकार रख भी ले तो फिर भाग कैसे सकता है? 'सिर पर पैर रखकर भागना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है—बहुत जल्दी कहीं से भागना। आँखें दिखाना, दाँत पीसना, कान पकड़ना, हाथ उठाना, पेट फूलना (जैसे—कुछ कहने के लिए हमारा पेट फूल रहा है।) आदि सैकड़ों हजारों मुहावरे हैं। इसलिए मुहावरों में शब्दों के साधारण अर्थ का विचार छोड़कर हमें उनके विशेष अर्थ का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसे मुहावरों के अर्थ पहले अच्छी तरह समझ लेने चाहिएँ और तब वहीं उनका प्रयोग करना चाहिए, जहाँ वे अपना ठीक अर्थ दें।

कुछ अवस्थाओं में शब्दों के कुछ अर्थ उनके वास्तविक अर्थों से कुछ दूर तो जा ही पड़ते हैं, पर कुछ अवस्थाओं में उनके साधारण से बिलकुल उलटे या बिलकुल अलग प्रकार के भी अर्थ होते हैं। जब हम अपनी दुकान बन्द करते हैं, तब कहते हैं—'हम दुकान बढ़ा रहे हैं।' दीया बुझाने को भी कहीं कहीं 'दीया बढ़ाना' कहते हैं। चूड़ियाँ स्त्रियों के सौभाग्य का चिह्न मानी जाती हैं, इसलिए उनके सम्बन्ध में भी 'टूटना-तोड़ना', या 'उतरना-उतारना' आदि

क्रियाओं का प्रयोग न करके वे कहती हैं—'यह चूड़ी बढ़ (टूट) गई।' या 'ये चूड़ियाँ बढ़ाकर (उतारकर) नई पहनो।' वास्तविक अर्थ में न तो उस समय दुकान ही बढ़ती है, न दिया ही और न चूड़ियाँ ही। होता यही है कि हम कोई अशुभ या अप्रिय बात ऐसे रूप में कहना चाहते हैं जिसमें वह हमें अप्रिय न जान पड़े। इसी लिए कहीं कहीं होली और चूल्हे आदि के साथ 'जलाना' क्रिया का प्रयोग न करके 'मंगलना' क्रिया का प्रयोग करते हैं। जैसे—'होली मंगल गई।' 'चूल्हा मंगल रहा है।' आदि। ऐसे प्रयोग इसलिए मंगल-भाषित कहलाते हैं कि हम इनके द्वारा अमंगल की जगह मंगल का भाव रखना चाहते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में शब्दों के वास्तविक अर्थ एक ओर रह जाते हैं; और उनमें ऐसे नये अर्थ आ लगते हैं जो बिलकुल अलग प्रकार के या उलटे होते हैं। ऐसे अवसरों पर मूल या नित्य के चलते हुए अर्थ नहीं लगाये जाते।

४

शब्दों का चुनाव

लिखने के समय हमें सबसे पहले ठीक ठीक शब्द चुनने की आवश्यकता होती है। हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि हम अपने वाक्यों में वही शब्द लावें, जो हमारे मन के भाव ठीक तरह से प्रकट कर सकें। यदि हम किसी को परिचय तो कराना चाहें गौ का, पर नाम लें घोड़े का, और कह चलें कि उसके सिर पर दो सींग होते हैं तो सुननेवाले हमें मूर्ख ही कहेंगे। हमें चाहिए तो कुरता, पर यदि हम दुकानदार से माँगें धोती तो हमें धोती ही मिलेगी। दुकानदार यह नहीं समझेगा कि हम वास्तव में कुरता चाहते हैं। इसलिए हमें प्रसंग के अनुसार ठीक ठीक शब्दों का ही व्यवहार करना चाहिए। हमें संज्ञाएँ ही नहीं, विशेषण, क्रिया-विशेषण, क्रियाएँ और विभक्तियाँ आदि भी ऐसी ही चुननी चाहिएँ, जो सुनने- या पढ़नेवाले पर हमारे मन का ठीक ठीक अभिप्राय प्रकट कर सकें।

हम कहते हैं—'एक गाँव में एक भला आदमी रहता था और एक चोर।' इससे सुननेवाले यही समझेंगे कि भला आदमी अलग रहता था और चोर अलग—उन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं था। पर यदि किसी के दो लड़के हों और उनमें से एक भला आदमी

और दूसरा चोर हो तो हम कहेंगे—'उनका एक लड़का भला आदमी था और दूसरा चोर।' इस वाक्य में 'दूसरा' शब्द यह सूचित करता है कि उन दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध था। यदि हम कहें—'आज पानवालों ने भी हड़ताल की है।' तो इसका अर्थ साधारण होगा। इससे यही समझा जायगा कि जिस तरह और बहुत तरह के दूकानदारों ने हड़ताल की है, उसी तरह पानवालों ने भी की है। पर यदि हम कहें—'आज पानवालों तक ने हड़ताल की है।' तो इसका अर्थ यह होगा कि और हड़तालों के दिन पानवाले अपनी दूकानें कभी बन्द नहीं करते थे ; पर आज उन लोगों ने भी हड़ताल की है। पहले वाक्य में 'भी' के कारण भी जोर तो है, पर उतना नहीं, जितना दूसरे वाक्य में 'तक' के प्रयोग से आया है। अर्थ या भाव में इस प्रकार का अन्तर और जोर शब्दों के ठीक चुनाव से ही आता है।

शब्द चुनते समय इस बात का तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि वे ठीक अर्थ या भाव प्रकट करनेवाले हों ; साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वे सहज हों और सुननेवाले झट उनका अर्थ समझ लें। हमारे शब्द जितने ही कठिन होंगे, उनका अर्थ समझने में सुननेवालों को भी उतनी ही कठिनता होगी। यदि हम कहें—'आज हमारा पेट भरा है।' तो हमारी बात समझने में किसी को कुछ भी कठिनता न होगी। पर यदि हम कहें—'आज हमारा उदर परिपूर्ण है।' तो हमारी बात कुछ ही लोगों की समझ में आवेगी, सब लोगों को समझ में न आवेगी। यदि हम कहें—'मैं आपके सम्मुख (या समक्ष) अपना निवेदन उपस्थित करना चाहता हूँ।' तो यह ऊँचे दरजे की हिन्दी तो अवश्य होगी, पर सबके समझने योग्य न होगी। अधिक लोग तो तभी समझेंगे, जब हम कहेंगे—'आज मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।' 'वह आज प्रस्थित

होनेवाला है।' की जगह 'वह आज चलने (या जाने) वाला है।' 'श्रवणेन्द्रिय' की जगह 'कान', 'समीप' की जगह 'पास,' 'शिखर' की जगह 'चोटी', 'भ्रमण' की जगह 'घूमना', 'परिचालन' की जगह 'चलाना' और 'अल्प समय पश्चात्' की जगह 'कुछ समय बीतने पर' कहना कहीं अच्छा और सहज है।

हम पहले बतला चुके हैं कि शब्द कितने प्रकार के होते हैं। उनमें दो मुख्य भेद तत्सम और तद्भव हैं। जब हम हिन्दी लिखने बैठें, तब जहाँ तक हो सके, हमें तद्भव शब्द ही काम में लाने चाहिएँ। तत्सम शब्द भी व्यर्थ नहीं हैं; पर वे समझ-बूझकर और ठीक ठिकाने पर ही काम में लाये जाने चाहिएँ। विद्यार्थियों को पहले ऐसी ही भाषा लिखने का अभ्यास करना चाहिए, जिसमें तद्भव शब्द अधिक हों। आगे चलकर बड़े होने पर और अच्छी विद्या या ज्ञान प्राप्त होने पर कठिन तत्सम शब्द भी काम में लाये जा सकते हैं। पर बिलकुल आरम्भ में ऐसा करना ठीक नहीं है।

एक बात और है। हमें लिखते या बोलते समय सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि हमारी बातें पढ़ने- या सुनने-वाले कौन लोग हैं। हम बात तो करें अपने किसी साथी या छोटे से, पर भाषा ऐसी बोलें जो जल्दी बड़ों की समझ में भी न आवे तो लोग हम पर हँसेंगे ही। इसी प्रकार हम बात तो करें किसी बहुत ऊँचे विषय की, पर अपने शब्द रक्खें बिलकुल साधारण, तो फल यही होगा कि हम अपने सब भाव या विचार ठीक तरह से प्रकट न कर सकेंगे। इसलिए हमें सुनने- या पढ़नेवालों का भी ध्यान रखना पड़ता है और विषय का भी। विद्यार्थियों को प्रायः सहज शब्दों से ही काम लेना चाहिए। बड़ों के ढंग पर बोलने या लिखने का काम बाद के लिए छोड़ रखना चाहिए।

पर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा में सहज शब्द तो होते हैं कम और कठिन शब्द ही होते हैं अधिक। अच्छी भाषा वही होती है, जिसमें बहुत से शब्द हों और सब शब्दों के अलग अलग अर्थ या भाव हों। पर ऐसे सब शब्द और उनके सब अर्थ सब लोग नहीं जानते ; इसलिए उन शब्दों में से भी चुनाव करते समय दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक तो यह कि वे शब्द अधिक से अधिक लोगों की समझ में आने के योग्य हों; और दूसरे यह कि वे ठीक ठीक भाव या अर्थ प्रकट कर सकते हों। ये दोनों बातें ऐसी हैं जो कभी भूलनी नहीं चाहिएँ।

हर शब्द का अपना एक विशेष अर्थ या भाव होता है। कभी कभी कुछ शब्द कुछ विशेष अर्थ में भी चल जाते हैं। जैसे 'प्राणी' और 'जानवर'। यदि यों देखा जाय तो प्राण और जान दोनों एक चीज हैं। 'प्राणी' उसे कहते हैं, जिसमें प्राण हों; और जानवर उसे कहते हैं, जिसमें जान हो। इस प्रकार अर्थ के विचार से 'प्राणी' और 'जानवर' एक ही चीज हैं या हो सकते हैं। फिर भी हम सब जानवरों को तो 'प्राणी' कह सकते हैं, पर सब प्राणियों को जानवर नहीं कह सकते। यदि कहें तो हम एक लड़ाई खड़ी कर लेंगे; क्योंकि 'जानवर' मुख्यतः पशु के अर्थ में ही प्रचलित है ; और 'प्राणी' में मनुष्य भी आ जाते हैं।

'एक दिन किसी ने बादशाह से चुगली खाई कि ये गाना बहुत अच्छा जानते हैं।' में 'चुगली' शब्द ठीक नहीं है। कारण यह है कि चुगली या तो झूठी बात के सम्बन्ध में होती है, या बुरी बात के सम्बन्ध में। यदि हम कोई बुरा काम करें और आप हमें हानि पहुँचाने के विचार से वह बात किसी दूसरे से कहें, तो वह 'चुगली' कहलावेगी। या यदि हम कोई बुरा काम न करते हों और आप व्यर्थ ही लोगों से कहें कि इसने ऐसा बुरा काम किया है, तो वह

भी 'चुगली' कहलावेगी, वल्कि 'झूठी चुगली' कहलावेगी। पर 'बहुत अच्छा गाना जानना' कोई बुरी बात नहीं है; और इसी लिए किसी के सम्बन्ध में यह कहना कि 'ये गाना बहुत अच्छा जानते हैं।' कोई चुगली या शिकायत नहीं है। इसलिए होना चाहिए—'एक बार किसी ने बादशाह से कह दिया........।'

'पशुओं के झुण्ड चारों ओर पानी की चाह में घूम रहे थे।' में 'चाह' की जगह 'खोज' या 'तलाश' रखना अधिक उत्तम होगा। किसी वस्तु की चाह तो केवल 'होती' है; 'चाह' में घूमना-फिरना आदि बातें नहीं होतीं; हाँ, 'चाह' के कारण ये सब बातें हो सकती हैं। 'उस पतिव्रता स्त्री को छूने का उत्साह कौन करेगा?' में 'उत्साह' शब्द का चुनाव ठीक नहीं है। वास्तव में इसकी जगह 'साहस' होना चाहिए। 'यह दुःख उसे और भी पीड़ित करने लगा।' में 'पीड़ित' शब्द ठीक नहीं है। दुःख सदा मनुष्य को दुःखी ही करता है; पीड़ित करना तो 'पीड़ा' या 'अत्याचार' आदि का काम है।

लिखने के समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि वाक्यों में व्यर्थ के शब्द न आने पावें। जिन वाक्यों में व्यर्थ के या फालतू शब्द होते हैं, वे भद्दे तो होते ही हैं; कभी कभी उन व्यर्थ के शब्दों के कारण ही वे अशुद्ध भी हो जाते हैं। वाक्यों में ऐसे व्यर्थ के शब्द या तो अज्ञान के कारण आ जाते हैं या असावधानी के कारण। कभी कभी शब्दों के अर्थ पर ठीक ध्यान न रखने के कारण भी वाक्य में व्यर्थ के कुछ शब्द आ जाते हैं। जरा सी सावधानी से वाक्य व्यर्थ के शब्दों से बचाये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए यदि हम कहें—'ठंढा बरफ' या 'गरम आग' तो इनमें 'ठंढा' और 'गरम' दोनों व्यर्थ हैं। बरफ सदा ठंढा होता है, कभी गरम नहीं होता; और आग सदा गरम होती है, कभी ठंढी

नहीं होती। 'वह विलाप करके रोने लगा।' में 'विलाप' और 'रोना' एक साथ रखना ठीक नहीं है। या तो होना चाहिए—'वह विलाप करने लगा।' या 'वह रोने लगा।' यदि हम कहें—'अच्छी तरह पाठ याद करना ही पास होने की सबसे बड़ी कुंजी है।' तो इसमें 'सबसे बड़ी' व्यर्थ है। कारण यह है कि हर चीज की कुंजी सदा एक होती है, दो, चार या दस नहीं होतीं और न छोटी, बड़ी और मझोली आदि कई प्रकार की होती हैं। यही बात 'एक बहुत बड़ी सीमा तक' के सम्बन्ध में भी है। हर बात की 'सीमा' सदा एक ही होती है; छोटी-बड़ी या कई प्रकार की सीमाएँ नहीं होतीं।

'आज हम लोग अपने प्रधान अध्यापक के यहाँ गये थे और वहाँ हम लोगों ने उनसे देर तक मुलाकात की।' में 'देर तक' व्यर्थ है। कारण यह है कि मुलाकात में वह सारा समय आ जाता है, जिसमें आदमी किसी के पास जाता है, उससे मिलता है, बैठकर उससे बातें करता है और अन्त में उससे विदा होकर लौटता है। 'चुनाव में विरोधी की जमानत बुरी तरह से जब्त हो गई।' में 'बुरी तरह से' व्यर्थ है। जमानत जब्त होने के अच्छे और बुरे प्रकार नहीं होते। वह तो कुछ विशेष अवस्थाओं में एक ही तरह से जब्त होती है। 'चार हजार रुपए मूल्य की सम्पत्ति' में 'मूल्य' व्यर्थ है; और 'उसने उसे ठोकर से ठुकरा दिया।' में 'ठोकर से' व्यर्थ है, क्योंकि ठोकर लगाने को ही 'ठुकराना' कहते हैं।

'इस काम के लिए ऐसा आदमी चुना जाना चाहिए जो किसी समय इस पद पर रह चुका हो।' में 'किसी समय' व्यर्थ है, क्योंकि 'इस पद पर रह चुका हो' में ही 'किसी समय' का भाव भी आ जाता है। 'वे अपनी प्रतिज्ञा के शब्दों पर दृढ़ रहे।' में 'के शब्दों' व्यर्थ है, क्योंकि प्रतिज्ञा में ही उसके शब्द भी आ जाते हैं। 'यदि

युद्ध न छिड़ने के पूर्व यह कार्य आरम्भ हुआ होता' में 'न' व्यर्थ आया है, क्योंकि इस प्रसंग में युद्ध छिड़ने का 'पूर्व' भी वही होगा, जो 'न छिड़ने के पूर्व' का है। 'वे आगे बढ़ सकने का प्रयत्न कर सकते हैं।' में 'बढ़ सकने' की जगह केवल 'बढ़ने' होना चाहिए। इस वाक्य में पहले 'सकने' और तब 'सकते' का प्रयोग होने के कारण भद्दापन तो आ ही गया है, दो जगह 'सकने' का भाव भी ठीक नहीं बैठता।

कभी कभी लोग भूल से एक ही वाक्य में एक ही भाव सूचित करनेवाले दो शब्द ले आते हैं; और इसी लिए उनमें से एक शब्द व्यर्थ होता है। जैसे 'मैं आज प्रातःकाल के समय वहाँ गया था।' इसमें 'काल' और 'समय' एक ही बात के सूचक हैं। इसलिए इसमें 'के समय' व्यर्थ है। 'वे लोग परस्पर एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते थे।' में 'परस्पर' और 'एक दूसरे को' एक ही अर्थ के सूचक हैं; इसलिए यहाँ या तो केवल 'परस्पर' होना चाहिए, या केवल 'एक दूसरे को।' 'वह इस बात की व्यवस्था का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था।' में 'व्यवस्था' और 'प्रबन्ध' एक ही बात के सूचक हैं, इसलिए होना चाहिए—'वह इस बात की कोई व्यवस्था नहीं कर सकता था।' या 'वह इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था।' 'हमारे यहाँ तरुण नव-युवकों की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध नहीं है।' में 'तरुण' इसलिए व्यर्थ है कि 'नव-युवक' सदा 'तरुण' ही होते हैं, वृद्ध या बालक नहीं होते। 'कृपया आप ही यह बताने का अनुग्रह करें।' में 'कृपया' का भी वही अर्थ है जो 'अनुग्रह करें' में आया है। इसमें या तो आरम्भ में 'कृपया' नहीं होना चाहिए या वाक्य का रूप होना चाहिए—'कृपया आप ही यह बतावें।' 'उन्हें अपने अहंकार का गर्व है।' में 'अहंकार' और 'गर्व' एक ही अर्थ के सूचक हैं; और 'उन्हें मृत्यु-दंड की सजा मिली है।' में 'दंड' और

'सजा' दोनों एक ही बात प्रकट करते हैं। 'यह एक ऐसा कार्य है जो मुझसे सम्भव नहीं हो सका है।' में 'सम्भव' और 'हो सका' एक ही बात के सूचक हैं। 'सम्भव' का अर्थ ही है 'हो सकना।' इसलिए जहाँ सम्भव रक्खा जाय, वहाँ 'हो सकना' का कोई रूप न होना चाहिए ; और जहाँ 'हो सकना' का कोई रूप हो, वहाँ 'सम्भव' का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

'आप ऐसी बात कह रहे हैं, जिसका कि मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था।' और 'यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसकी कि सत्यता निश्चित है।' में 'कि' बिलकुल व्यर्थ है और उसके प्रयोग से वाक्य भद्दे हो गये हैं। 'वह दो दिन बनारस में रहकर कलकत्ते जायगा।' में 'में' व्यर्थ है, और 'तुन कभी तीज-त्योहार पर भी नहीं आते हो।' में 'हो' निरर्थक है। 'अब मुझे किसी बात का डर नहीं रहा है।' में 'है' फालतू है।

और भी कई प्रकार से लोग फालतू या व्यर्थ के शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे—'हमारे यहाँ सब चीजें किफायत के साथ मिलती हैं।' इसमें 'के साथ' का क्या अर्थ है ? अधिक से अधिक यही अर्थ हो सकता है कि हमारे यहाँ सब चीजें मिलती हैं और उनके साथ 'किफायत' भी मिलती है। होना चाहिए—'किफायत से मिलती हैं।' 'सिप्रा उज्जयिनी के साथ बहनेवाली नदी है।' का तो यही अर्थ होगा कि उज्जयिनी भी कोई बहनेवाली नदी (या नगरी ही सही) है ; और सिप्रा उसके साथ साथ बहती चलती है। होना चाहिए—'सिप्रा उज्जयिनी से होकर बहनेवाली नदी है।' 'हमने उनके साथ परामर्श किया।' और 'हमारी सहानुभूति आपके साथ है।' में भी इसी 'के साथ' के कारण बहुत-कुछ वही बात आ गई है। होना चाहिए—'हमने उनसे परामर्श किया।' और 'आपसे

हमारी सहानुभूति है।' इसी प्रकार—'हमें उनके द्वारा विदित हुआ।' से 'हमें उनसे विदित हुआ।' कहना कहीं अच्छा और हलका है।

'आप चाहे यहाँ रहें और चाहे वहाँ जायँ।' में 'और' बिलकुल व्यर्थ है। 'और' तो दो बातों को जोड़ने के लिए आता है, बल्कि यह कहना चाहिए कि ऐसी जगह आता है, जहाँ दो या अधिक बातें या चीजें एक साथ हों। यहाँ तो दो में से एक ही बात पूरी करने का अभिप्राय है, दोनों बातें पूरी करने का नहीं। इसलिए होना चाहिए—'आप चाहे यहाँ रहें, चाहे वहाँ जायँ।' यही बात—'या तो आप बैठे रहें और या चले जायँ।' के सम्बन्ध में भी है। इसमें भी 'और' व्यर्थ है। होना चाहिए—'या तो आप बैठे रहें, या चले जायँ।

५

शब्दों का स्थान

वाक्य में हर शब्द का अपना एक स्थान होता है। जिस वाक्य में सब शब्द अपने ठीक स्थान पर होते हैं, वही शुद्ध भी होता है और सुन्दर भी। 'लड़का जाता घर अपने है' या 'लड़का है घर अपने जाता' कविता में भले ही ठीक बैठें, पर गद्य में इस तरह के वाक्य अच्छे नहीं लगते। गद्य में तो 'लड़का अपने घर जाता है।' कहना ही ठीक होगा। गद्य में वाक्य बनाने के जो नियम हैं, उनका सदा ध्यान रखना चाहिए; और उन्हीं नियमों के अनुसार वाक्य बनाने चाहिएँ।

यदि गद्य में वाक्य बनाने के नियमों का ध्यान न रक्खा जाय तो भाषा में कई तरह के दोष आ जाते हैं। पहली बात ता यह है कि वाक्य व्याकरण के विचार से अशुद्ध हो जाता है। 'पुस्तक अच्छी बहुत है।' अशुद्ध है; और 'पुस्तक बहुत अच्छी है।' शुद्ध है। 'मोहन याद पाठ कर अपना रहा है।' अशुद्ध है; और 'मोहन अपना पाठ याद कर रहा है।' शुद्ध है। 'आप जहाँ तक हो सके, इस बात का प्रयत्न करें।' और 'मैंने जबतक सम्भव था, उन्हें कष्ट नहीं दिया।' के बदले 'जहाँ तक हो सके, आप इस बात का प्रयत्न करें।' और 'जब तक सम्भव था, तब तक मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया।' कहना अधिक ठीक है। और 'वह अभी कहीं बैठ पाया नहीं है।' से 'वह

अभी कहीं बैठ नहीं पाया है।' अधिक सुन्दर है। इस प्रकार के बहुत से वाक्य स्वयं सोचे और बनाये जा सकते हैं।

वाक्य में शब्द यदि अपने ठीक स्थान पर न हों तो कुछ अवसरों पर उनका अर्थ भी बदल जाता है। हम जिन अवसरों पर 'जी हाँ।' कहते हैं, उन सभी अवसरों पर 'हाँ जी।' नहीं कह सकते। और जिन अवसरों पर 'हाँ जी' कहते हैं, उन सभी अवसरों पर 'जी हाँ' नहीं कह सकते। दोनों के कुछ अलग अलग भाव हैं और अलग-अलग अवसरों पर उनका प्रयोग होता है। किसी बड़े के बुलाने पर हम प्रायः 'जी हाँ।' कहते हैं; और बराबरवालों से या अपने से छोटों से बात-चीत करते समय प्रायः कहते हैं—हाँ जी, जरा यह तो बतलाओ।

'महाराज ही हैं।' और 'महाराज हैं ही।' में जो अन्तर है, वह स्पष्ट है। 'वे सुख के ही सपने देखा करते हैं।' और 'वे सुख के सपने ही देखा करते हैं।' में भी बहुत अन्तर है। इनमें से पहले वाक्य का भाव यह है कि वे दिन-रात सुख पाने का ही विचार करते रहते हैं—सुख के सिवा और किसी बात का उन्हें कभी ध्यान ही नहीं आता। पर दूसरे वाक्य का भाव यह है कि वे सुखी होने का विचार तो करते रहते हैं, पर कोई ऐसा काम या उपाय नहीं करते, जिससे वे सुखी हो सकें। 'इस महीने में वर्षा होगी।' बिलकुल साधारण कथन है। इस वाक्य के शब्दों से जो अर्थ निकलता है, उसके सिवा और कोई अर्थ या भाव इसमें नहीं है। पर 'वर्षा इस महीने में होगी।' में एक विशेष भाव है। ऐसा वाक्य वहीं आवेगा, जहाँ हमें यह बतलाना होगा कि इसके पहले या बाद के महीनों में वर्षा नहीं होगी। 'केवल अर्थ के बल पर' में 'अर्थ' पर जोर है; और 'अर्थ के बल पर ही' में 'बल' पर।

'बात ऐसी होनी चाहिए, जिसका सुननेवालों पर अचूक असर

हो।' भी बिलकुल साधारण कथन है। पर 'बात ऐसी होनी चाहिए जिसका अचूक असर सुननेवालों पर हो।' में सुननेवालों पर कुछ अधिक जोर आ जाता है। 'एक दिन, बुड्ढे होने पर वे कूएँ पर बैठे थे।' के बदले 'बुड्ढे होने पर एक दिन वे कूएँ पर बैठे थे।' या 'बुढ़ापे में एक दिन वे कूएँ पर बैठे थे।' कहना ही अधिक ठीक होगा। 'एक दिन बुड्ढे होने पर.........।' का तो अर्थ यही होगा कि मनुष्य एक दिन में भी बुड्ढा हो सकता है; और इसी तरह के किसी दिन जब वे (उस दिन) बुड्ढे हो गये, तब कूएँ पर बैठे थे।

'बेंतों से भागे हुए लड़कों की मृत्यु।' का अर्थ यह होगा कि जो लड़के बेंतों के डर या मार से भाग गये थे, उनकी मृत्यु। पर यदि हम यह बतलाना चाहते हों कि जो लड़के भाग गये थे, उन पर बेंतों की ऐसी मार पड़ी कि वे मर गये, तो हमें कहना होगा—'भागे हुए लड़कों की बेंतों से मृत्यु।' 'बम्बई में सुभाष-दिवस पर गोलियाँ चलीं।' का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि सुभाष-दिवस भी आदमियों की भीड़ की तरह की कोई चीज होगी। पर यदि हम कहें 'सुभाष-दिवस पर बम्बई में गोलियाँ चलीं।' तो इसका और किसी तरह का अर्थ नहीं लगाया जा सकेगा।

'लाठियों की मार से मोहन के हाथ और सिर घायल हो गये।' कहना इसलिए अच्छा नहीं जान पड़ता कि उसके हाथ तो दो अवश्य थे, पर सिर दो नहीं थे—एक ही था। इसलिए—'मोहन का सिर और हाथ घायल हो गये।' कहना अधिक अच्छा है। 'आप इसी काम के लिए विशेषतः बम्बई से आये थे।' का सीधा-सादा अर्थ यही होगा कि आप आये तो और भी बहुत सी जगहों से थे, पर विशेषतः बम्बई से आये थे। शुद्ध रूप होगा—'आप विशेषतः इसी काम के लिए बम्बई से आये थे।' 'फीता न होने के

कारण एक मोजा तना हुआ था और दूसरा खिसककर जूते पर आ गया था।' से तो यही अर्थ निकलेगा कि फीता न होने के कारण ही एक मोजा तना हुआ था। पर बात बिलकुल उलटी है। एक मोजे पर तो फीता बँधा था जिससे वह तना हुआ था। हाँ दूसरा मोजा, फीता न होने के कारण, खिसककर जूते पर आ गया था।

'आपने एक छात्रों की सभा में भाषण किया।' कहना ठीक नहीं है। ठीक रूप होगा—'आपने छात्रों की एक सभा में भाषण किया।' यदि हम इससे कुछ और आगे बढ़कर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि—'आपने दस छात्रों की सभा में भाषण किया।' कहना एक दूसरी दृष्टि से बिलकुल ठीक होगा। एक ऐसी सभा हुई जिसमें दस छात्र आये। उस सभा में आपने भाषण किया। यह तो बिलकुल ठीक है। पर यदि आपने ऐसी दस सभाओं में भाषण किये, जिन सबमें छात्र ही छात्र थे, तब हम कहेंगे—'आपने छात्रों की दस सभाओं में भाषण किये।' 'वे अच्छी कविता करते हैं।' और 'वे कविता अच्छी करते हैं।' में बहुत अन्तर है। पहला वाक्य बिलकुल साधारण है। कोई कविता करता है और अच्छी कविता करता है तो हम कहते हैं वे अच्छी कविता करते हैं। पर 'वे कविता अच्छी करते हैं।' का भाव यह होगा कि उनके और काम अच्छे नहीं होते; हाँ कविता वे अवश्य अच्छी करते हैं। 'कोई समय निश्चित हो।' और 'कोई निश्चित समय हो।' में भी बहुत अन्तर है। हम कोई काम करना चाहते हैं, पर उसके करने का कोई समय निश्चित नहीं करते। ऐसी अवस्था में कहा जा सकता है—'इसके लिए कोई समय निश्चित होना चाहिए।' इसमें 'निश्चित' का सम्बन्ध 'होना' क्रिया से है। पर जब हम कहते हैं—'इस काम के लिए कोई निश्चित समय होना चाहिए।' तब हम समय के 'निश्चित' होने पर अधिक जोर देते हैं। अर्थात् हम उसे यों ही संयोग के भरोसे नहीं

छोड़ देना चाहते, बल्कि इस बात पर जोर देते हैं कि इसके लिए कोई 'समय' निश्चित हो जाना चाहिए। ऐसी अवस्था में 'निश्चित' का सम्बन्ध 'समय' से होता है।

यदि हम कहें—'वे जंगलियों की तरह आपस में लड़ते हैं।' तो इसका अर्थ यह होगा कि जिस तरह जंगली लोग आपस में लड़ते हैं, उसी तरह वे भी आपस में लड़ते हैं। पर यदि हम कहें—'वे आपस में जंगलियों की तरह लड़ते हैं।' तो इसका अर्थ यह होगा कि वे आपस में उसी तरह लड़ते हैं, जिस तरह जंगली लोग लड़ते हैं। पहले वाक्य में जंगलियों की लड़ाई का भाव मुख्य है; पर दूसरे वाक्य में उनका 'आपस' वाला भाव मुख्य है; और उससे यह अभिप्राय भी निकल सकता है कि सम्भव है, दूसरों के साथ वे सभ्यों की तरह लड़ते हों, जंगलियों की तरह न लड़ते हों।

'वह कभी कभी उनका रक्त चूसने के लिए आ जाता है।' और 'वह उनका रक्त चूसने के लिए कभी कभी आ जाता है।' में भी कुछ अन्तर है। पहले वाक्य में यह भाव है कि वह कभी कभी तो उनका रक्त चूसने के लिए आ जाता है; पर हो सकता है कि कभी कभी वह और किसी प्रकार से उन्हें कष्ट देने के लिए अथवा और किसी उद्देश्य से भी आता या आ सकता हो। उसमें 'रक्त चूसने' का भाव मुख्य नहीं है, बल्कि उसके 'कभी कभी आ जाने' का भाव ही मुख्य है। पर दूसरे वाक्य में 'रक्त चूसने' का भाव मुख्य है। पर यदि हम कहें—'वह उनका रक्त कभी कभी चूसने के लिए आ जाता है।' तो इसका आशय यह होगा कि वह आ तो जाता है; पर जब तक रहता है, तब तक बराबर उनका रक्त नहीं चूसा करता, केवल कभी कभी चूसता है।

'अन्त में यदि आप आज्ञा दें तो मैं इतना और निवेदन करूँगा कि......।' का अर्थ यह हो जायगा कि यदि आप (इस समय नहीं)

अन्त में आज्ञा दें, तो मैं·········। पर वाक्य में आगे चलकर जो 'इतना और' आया है, उससे सूचित होता है कि बोलनेवाला पहले से कुछ कहता आ रहा है; और इसी बीच में वह यह भी कहता है—'यदि आप मुझे आज्ञा दें तो·········।' इस दृष्टि से यह वाक्य ठीक नहीं है। इसका रूप होना चाहिए—'यदि आप आज्ञा दें तो अन्त में मैं इतना और निवेदन करूँगा कि·········।'

'वहाँ उसे निपुणिका नाम की रानी की दूसरी सखी मिली।' का आशय यह होगा कि रानियाँ कई थीं; और उनमें से निपुणिका नाम की रानी की दूसरी सखी उसे मिली। पर जहाँ हमें यह वाक्य लिखा हुआ मिला था, वहाँ यह आशय ठीक नहीं वैठता था। वास्तव में दूसरी सखी का नाम निपुणिका था। इसलिए होना चाहिए था—'वहाँ उसे रानी की निपुणिका नाम की दूसरी सखी मिली।' 'मुझे दुःख है कि आज मैं एक बरात में जा रहा हूँ, इसलिए आपसे न मिल सकूँगा।' का अर्थ यह होगा कि मुझे आपसे न मिल सकने का नहीं, बल्कि बरात में जाने का ही दुःख है। इसलिए होना चाहिए—'मैं आज एक बरात में जा रहा हूँ; इसलिए दुःख (बल्कि खेद) है कि आपसे न मिल सकूँगा।'

प्रायः हमें किसी से कोई बात पूछनी पड़ती है—कोई प्रश्न करना होता है। जिन वाक्यों में प्रश्न का भाव होता है, उन्हें प्रश्नात्मक वाक्य कहते हैं। हिन्दी में यह नियम है कि ऐसे वाक्यों में 'क्या' सदा पहले आता है। जैसे—'क्या आप वहाँ गये थे?' 'क्या आप उनसे मिले थे?' 'क्या आप भोजन कर चुके?' आदि। ऐसे वाक्यों में कुछ लोग भूल से 'क्या' पहले न रखकर अन्त में रख देते हैं। जैसे—'आप वहाँ गये थे क्या?' 'आप उनसे मिले थे क्या?' 'आप भोजन कर चुके क्या?' आदि। पर इस तरह के वाक्य ठीक नहीं समझे जाते। इसलिए ऐसे वाक्यों में 'क्या' सदा पहले

ही रहना चाहिए। 'तुम कह सकोगे क्या कि वह क्यों नहीं आया?' से 'क्या तुम कह सकते हो कि वह क्यों नहीं आया?' कहीं अधिक सुन्दर है। हाँ यदि वाक्य हलका करना चाहें तो ऐसे वाक्यों में से 'क्या' बिल्कुल निकाला भी जा सकता है। ऐसे वाक्यों के अन्त में जो प्रश्न-चिह्न होगा, वही 'क्या' का काम दे जायगा।

पर जो बात 'क्या' के सम्बन्ध में कही गई है, वही 'क्यों' और 'कैसे' आदि के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। पहली बात तो यह है कि 'क्यों' और 'कैसे' आदि प्रायः वाक्य के आरम्भ में नहीं आते, बल्कि बीच में या और कहीं आते हैं। 'तुम वहाँ क्यों गये थे?' और 'वह उसे अपने साथ क्यों नहीं लाया?' ही कहना ठीक है। 'क्यों तुम वहाँ गये थे? और 'क्यों वह उसे अपने साथ नहीं लाया?' सरीखे वाक्य साधारण कथन की अवस्था में ठीक नहीं है। हाँ यदि 'क्यों' पर ही हमें ज्यादा जोर देना हो तो बात दूसरी है। यही बात 'आप यहाँ कैसे आये?' और 'यह काम कैसे होगा?' के सम्बन्ध में भी है।

कुछ अवसरों पर शब्दों के स्थान के कारण ही वाक्यों का जोर घट या बढ़ जाता है। जैसे—'अपने जिन मित्रों के साथ मैं घूमता था, वे मुझे अच्छी अच्छी बातें बतलाते थे।' बिलकुल साधारण कथन है। इसमें किसी विशेष शब्द, व्यक्ति या कार्य पर कोई जोर नहीं है। पर यदि हम कहें—'मेरे वे मित्र, जिनके साथ मैं घूमता था, मुझे अच्छी अच्छी बातें बतलाते थे।' तो 'वे मित्र' पर जोर आ जाता है। यही बात 'जो पुस्तक मैंने पढ़ी थी' और 'जिस जगह मैंने उसे पाया था' सरीखे वाक्यों के सम्बन्ध में भी है। यदि इनका रूप बदलकर हम कहें—'वह पुस्तक, जो मैंने पढ़ी थी।' और 'वह जगह, जहाँ मैंने उसे पाया था।' तो इन वाक्यों में 'पुस्तक' और 'जगह' पर ज्यादा जोर आ जायगा। 'आपको रुपया

किस काम के लिए चाहिए ?' साधारण कथन है। पर 'आपको किस काम के लिए रुपया चाहिए ?' में 'काम' पर कुछ जोर आता है। और 'रुपया आपको किस काम के लिए चाहिए ?' में 'रुपया' पर जोर आ जाता है। 'सभी नये और पुराने लेखक' बिलकुल साधारण कथन है। पर 'नये और पुराने सभी लेखक' कहने से 'सभी' पर कुछ ज्यादा जोर आ जाता है।

'उसने अपना काम जल्दी खतम कर दिया।' और 'अपना काम उसने जल्दी खतम कर दिया।' में से पहला वाक्य साधारण है। उसका भाव यह है कि औरों की अपेक्षा उसने अपना काम जल्दी खतम किया। पर दूसरे वाक्य का भाव यह है कि शायद उसके पास कुछ और लोगों के काम भी थे। उन सब कामों में से अपना काम तो उसने जल्दी खतम कर दिया, पर दूसरों के कामों में देर लगाई।

'सिपाही नई वर्दियों में अच्छे जान पड़ते थे।' और 'नई वर्दियों में सिपाही अच्छे जान पड़ते थे।' में से पहले वाक्य का आशय यह है कि सिपाही यों तो अच्छे थे ही, पर नई वर्दियों में और भी अच्छे जान पड़ते थे। दूसरे वाक्य का आशय यह है कि सिपाही साधारणतः अच्छे नहीं थे और पुरानी वर्दियों में भद्दे दिखाई देते थे। पर जब उन्होंने नई वर्दियाँ पहन लीं, तब, उन वर्दियों के कारण ही, वे अच्छे जान पड़ने लगे।

६

हिन्दी ढंग

हर भाषा के बोलने और लिखने का अपना एक अलग और निराला ढंग होता है। कुछ बातें ऐसी होती हैं जो हम हिन्दीवाले एक ढंग से कहते हैं, उर्दूवाले कुछ दूसरे ढंग से और अँगरेजीवाले किसी तीसरे ढंग से। हो सकता है कि वही बात बँगला, मराठी या गुजराती आदि भाषाओं में किसी ओर ढंग से कही जाती हो। भाषा का यह ढंग ही उसका रूप शुद्ध रखता है और यही उसके अच्छे होने की सबसे अच्छी पहचान या कसौटी है।

यदि हम कहें—'मैं आपसे यह कहना माँगता हूँ कि......।' तो हो सकता है कि आप हँस पड़ें। क्यों? इसी लिए कि यह बोलने का हिन्दी ढंग नहीं है। यह कहने का अँगरेजी या बँगला ढंग हो सकता है, पर हिन्दी नहीं। 'अब तो हम हमारे घर जायँगे।' भी हिन्दी ढंग नहीं है। यह बँगला या मराठी ढंग हो सकता है। 'आज हमने वहाँ जाना है।' बोलने का पंजाबी ढंग है, हिन्दी नहीं। 'हम आपसे कहे थे।' पूरबी हिन्दी का ढंग भले ही हो, विशुद्ध और मानक हिन्दी का ढंग नहीं है। 'हम वहाँ जाने नहीं सकेंगे।' बँगला ढंग की और 'यह बात जरूर होना चाहिए थी।' उर्दू ढंग की बात-चीत है। इसलिए हिन्दी लिखते समय हमें सदा इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि हमारे वाक्य और भाव प्रकट करने के प्रकार आदि सब हिन्दी ढंग के हों। जिस रचना में दूसरी भाषाओं के ढंग की गन्ध हो, वह कभी अच्छी हिन्दी नहीं कही जा सकती।

इसलिए हमें लिखते समय सदा अपनी भाषा के ढंग और स्वरूप का ध्यान रखना चाहिए। हमारी रचना में कोई ऐसी बात नहीं आनी चाहिए जो हमारी भाषा के ढंग और स्वरूप के विरुद्ध हो। जो बातें हमारी भाषा के ढंग और स्वरूप के विरुद्ध होंगी, वे हमारी भाषा का ढंग और स्वरूप बिगाड़नेवाली ही होंगी, उसमें सुन्दरता लानेवाली नहीं होंगी। यदि हम इस प्रकार की बातों का ध्यान न रक्खेंगे, तो मानों हम अपनी मातृ-भाषा का स्वरूप दिन पर दिन बिगाड़ते चले जायँगे। और हो सकता है कि इस बिगाड़ के कारण कोई ऐसा दिन भी आ जाय, जब कि उसका रूप इतना बिगड़ जाय कि पहचाना ही न जा सके।

बहुत से विद्यार्थी विद्यालयों में हिन्दी के साथ अँगरेजी भी पढ़ते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि बहुत से विद्यार्थी तो विद्यालयों में अँगरेजी ही पढ़ने जाते हैं और वहाँ अँगरेजी के साथ साथ हिन्दी की भी थोड़ी-बहुत शिक्षा पाते हैं। ऐसे विद्यार्थी अँगरेजी बोल-चाल का ढंग तो सीख लेते हैं, पर हिन्दी ढंग उनके सामने आने ही नहीं पाता। फिर वे लोग जो कुछ लिखते या बोलते हैं, वह ऐसे लोग भी पढ़ते और सुनते हैं जो अँगरेजी बिलकुल नहीं जानते और अपने हिन्दी ढंग से भी प्रायः अपरिचित होते हैं। इसका फल यह होता है कि वे भी अपना ढंग ठीक तरह से न जानने के कारण बहुत कुछ अँगरेजी ढंग से बोलने और लिखने लगते हैं। इससे हमारी भाषा का स्वरूप दिन पर दिन बहुत कुछ बिगड़ता जा रहा है। नये विद्यार्थियों को इस विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए और दूसरों की देखा-देखी अपनी भाषा का स्वरूप बिगाड़ना नहीं चाहिए।

एक उदाहरण लीजिए। 'उस स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे बहुत मारता है और उसे भय है कि उसके साथ रहने में उसके प्राण न बचेंगे।' इस वाक्य का ढंग हिन्दी नहीं, बल्कि बिलकुल अँगरेजी है। इस अँगरेजी ढंग के कारण ही साधारण हिन्दी जाननेवाले जल्दी इसका ठीक-ठीक अर्थ न समझ सकेंगे। तिस पर इस वाक्य में जो उसे, उसका, उसको और उसे आदि छः-सात बार आये हैं, उनके कारण वाक्य में जो भद्दापन आ गया है, वह अलग। यही बात हिन्दी ढंग से स्पष्ट रूप में और बहुत अच्छी तरह इस प्रकार कही जा सकती है—'उस स्त्री ने कहा कि मेरा पति मुझे बहुत मारता है और मुझे भय है कि उसके साथ रहने में मेरे प्राण न बचेंगे।' अब इन दोनों वाक्यों का मिलान करके आप स्वयं समझ सकेंगे कि अँगरेजी और हिन्दी ढंग में क्या अन्तर है और दोनों में से कौन सा ढंग अच्छा और अपनाने योग्य है।

आज-कल प्रायः लोग लिखते हैं—'वे इस विषय में बहुत स्वार्थ लेते हैं।' पर इस 'स्वार्थ लेने' का अर्थ क्या है? कुछ भी नहीं। हम यह तो कह सकते हैं—'हमारा इस विषय में स्वार्थ है।' या 'सब लोग अपने स्वार्थ का ध्यान रखते हैं।' पर 'किसी विषय में 'स्वार्थ लेना' हमारा हिन्दी ढंग नहीं है; और इसी लिए हिन्दी में इसका कुछ अर्थ भी नहीं है। यही बात 'भाग लेना' के सम्बन्ध में भी है। 'हम इस कार्य में भाग लेते हैं।' सरीखे प्रयोग भी हिन्दी ढंग के न होने के कारण कुछ भी अर्थ नहीं रखते। किसी सम्पत्ति में हमारा भाग (अंश) हो सकता है; और हम सब प्रकार से अपना वह भाग ले सकते हैं। पर 'कार्य में भाग लेना' बिलकुल अँगरेजी ढंग का अनुकरण है। इसी प्रकार का एक और प्रयोग 'माँग करना' है। 'उन्होंने शत्रुओं से हथियारों को रख देने की माँग की।' और 'हम लोग अपने अधिकारों की माँग करते हैं।' आदि ऐसे प्रयोग हैं जिनमें

सीधा सी बात दूसरों के ढंग से कुछ घुमाव-फिराव से कही गई है। हिन्दी ढंग है—'उन्होंने शत्रुओं से हथियार रख देने के लिए कहा।' और 'हम लोग अपने अधिकार माँगते हैं।' 'इस दिशा में बहुत कुछ कार्य हो चुका है।' से 'इस विषय में (या इस सम्बन्ध में) बहुत कुछ कार्य हो चुका है।' लिखना कहीं अच्छा है। पर बहुत से लोग सीधा प्रकार और अपना ढंग छोड़कर टेढ़े प्रकार और दूसरों के ढंग से अपनी बातें कहकर अपनी हँसी भी कराते हैं और अपनी भाषा का स्वरूप भी बिगाड़ते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। विद्यार्थियों को आरम्भ से ही इस प्रकार के भद्दे प्रयोगों से बचना चाहिए।

प्रायः लोग लिखते हैं—'न केवल यही, बल्कि वे वहाँ से चले भी आये।' यह भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग है—'यही नहीं, बल्कि वे वहाँ से चले भी आये।' इसमें ध्यान रखने की एक बात और है। वह यह कि 'केवल' के साथ 'यही' रखना भी ठीक नहीं है। 'केवल यह' तक तो ठीक है, या खाली 'यही' भी ठीक है; पर 'केवल यही' इसलिए ठीक नहीं है कि 'यही' का अर्थ ही है—केवल यह। 'यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा, ऐसी हमें आशा है।' भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग तभी होगा, जब लिखा या कहा जायगा—'हमें आशा है कि यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा।' 'वह समय अपना काम निकालने का होने से मैं चुप रहा।' के बदले हिन्दी में इस रूप में लिखना ठीक होगा—'वह समय अपना काम निकालने का था, इसलिए मैं चुप रहा।' 'हम क्या लिखें, कैसे लिखें, यह तुरन्त ही निश्चित हो जाय, यदि हम यह समझ लें कि हम किसके लिए लिखते हैं।' लिखने के बदले हमें लिखना चाहिए—'यदि हम यह समझ लें कि हम किसके लिए लिखते हैं तो यह तुरन्त निश्चित हो जाय कि हम क्या लिखें और कैसे लिखें।'

अब तक वाक्यों के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सब प्रायः ऐसे हैं जो अँगरेजी ढंग से कोई बात सोचने के कारण हमारे यहाँ चल पड़े हैं। अँगरेजी की कृपा से और भी कई तरह के प्रयोग हिन्दी में चलने लगे हैं जो वास्तव में हिन्दी ढंग के नहीं हैं। हम सीधी तरह से 'जल्दी ही' या 'शीघ्र ही' आदि न लिखकर लिख जाते हैं—'निकट भविष्य में ऐसा होनेवाला है।' यह बिलकुल अँगरेजी ढंग है। 'हम उनका नाम आदर के साथ लेते हैं।' 'वे धैर्य के साथ अपना काम कर रहे हैं।', 'आपने यह काम योग्यता के साथ किया है।' और 'उन्होंने सरलता के साथ उत्तर दिया।' सरीखे वाक्यों में 'के साथ' भी उर्दू और अँगरेजी ढंग के अनुकरण के कारण ही आता है। इसकी जगह हम अपने ढंग से सीधे-सादे 'पूर्वक' शब्द से काम चला सकते हैं और कह सकते हैं—'हम उनका नाम आदरपूर्वक लेते हैं।' आदि। 'यह बीमारी देश में लड़ाई के द्वारा फैली थी।' 'लड़ाई के द्वारा लोगों ने खूब धन कमाया।' 'दो एक सज्जनों द्वारा यह कहा गया।' सरीखे वाक्यों में 'के द्वारा' भी अँगरेजी ढंग का अनुकरण होने के कारण बुरा तो है ही, कई कारणों से अशुद्ध भी है। ऐसे वाक्य हमें इस प्रकार लिखने चाहिएँ—'देश में यह बीमारी लड़ाई के कारण फैली थी।', 'लड़ाई में लोगों ने खूब धन कमाया।' और 'एक दो सज्जनों ने यह कहा।' 'हम वहाँ नहीं गये थे, क्योंकि उन्होंने हमें नहीं बुलाया था।' भी बिलकुल अँगरेजी ढंग का वाक्य है। हिन्दी ढग से यह बात इस रूप में लिखी जानी चाहिए—'उन्होंने हमें नहीं बुलाया था, इसलिए हम वहाँ नहीं गये थे।' 'उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया।' भी अँगरेजी ढग का वाक्य है। हिन्दी ढंग का वाक्य होगा—'उसपर मुकदमा चलाया गया।'

जिस प्रकार अलग-अलग प्रान्तों में कुछ ऐसे शब्द चलते

हैं जो सब जगह नहीं बोले और समझे जाते, उसी प्रकार अलग अलग प्रान्तों और वहाँ की भाषाओं में कुछ ऐसे प्रयोग भी होते हैं जो अच्छी हिन्दी में नहीं चलते। ऐसे प्रयोग 'स्थानिक' कहलाते हैं और इनमें से बहुतेरे हमारे हिन्दी ढंग के बिरुद्ध होते हैं। जैसे पंजाबवाले प्रायः बोलते और लिखते हैं—'हमने वहाँ जाना है।' 'हमने अभी खाना है।' आदि। अच्छी हिन्दी में यही बातें इस रूप में कही जाती हैं—'हमें वहाँ जाना है।' और 'हमें अभी खाना है।' आदि। प्रायः बिहार के लोग लिखते और बोलते हैं—'जो सज्जन उसे पाये हों...।' 'वे कोई स्कूल नहीं खोले थे।' और 'तुम भगवान से अच्छा भाग्य नहीं पाये हो।' हिन्दी ढंग से ये वाक्य इस प्रकार लिखे जायँगे—'जिन सज्जन को वह मिला हो...।' 'उन्होंने कोई स्कूल नहीं खोला था।' और 'तुमने भगवान् से अच्छा भाग्य नहीं पाया है।' 'शाम' का अर्थ है—संध्या। पर बिहारवाले प्रायः लिखते हैं—'वे दोनों शाम टहलने जाते हैं।' होना चाहिए—'वे दोनों समय टहलने जाते हैं।'

उर्दूवाले लिखते हैं—'पेश्तर इसके कि कोई हँसे, हम खुद हँस पड़ते हैं।', ''बगैर किसी की मदद के यह काम नहीं हो सकता।', 'बजाय इसके कि आप यहाँ आवें, मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।' और 'बेहतर हो कि आप किताब दे दें।' आदि। उनकी देखा-देखी हिन्दी में भी कुछ लोग लिख जाते हैं—'पूर्व इसके कि कोई हँसे, हम स्वयं हँस पड़ते हैं।' 'बिना किसी की सहायता के यह काम नहीं हो सकता।' 'इसके बदले कि आप यहाँ आवें, मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।' और 'अच्छा हो कि आप पुस्तक दे दें।' आदि। पर ये भी हिन्दी ढंग नहीं हैं। इनके बदले होना चाहिए—'किसी के हँसने के पहले हम स्वयं हँस पड़ते हैं।' 'किसी की सहायता के बिना यह काम नहीं हो सकता।' 'आपके यहाँ आने के बदले मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।' और 'आप पुस्तक दे दें तो अच्छा हो।' आदि।

प्रायः हमें किसी से कोई बात पूछनी होती है—कोई प्रश्न करना होता है। इस प्रकार के वाक्यों में प्रश्न का भाव होता है, इसी से इन्हें 'प्रश्नात्मक वाक्य' कहते हैं। प्रायः ऐसे वाक्यों में क्या, कैसे, कहाँ और क्यों आदि शब्द रहते हैं। ऐसे वाक्य लोग प्रायः इन रूपों में लिख जाते हैं—'आप वहाँ गये थे क्या ?' 'आप भोजन कर चुके क्या ?' 'आप उनसे मिले थे क्या ?' पर यह भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी में 'क्या' सदा पहले रक्खा जाता है। जैसे-'क्या आप वहाँ गये थे ?' "क्या आप भोजन कर चुके ?" 'क्या आप उनसे मिले थे ?' आदि। हाँ 'क्यों,' 'कैसे' और 'कहाँ' आदि शब्द वाक्यों के बीच में भी आते हैं और आरम्भ में भी। जैसे—'आपने मुझसे क्यों न कहा ?' 'आप यह झगड़ा कैसे निपटावेंगे?' 'आज-कल वे कहाँ रहते हैं ?' आदि। और 'क्यों ऐसी बात कहते हो ?', 'कैसी पुस्तक चाहिए ?' और 'कहाँ जा रहे हो ?' आदि।

७

वाक्यों की बनावट

जब हम अपने मन का कोई भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्द अपने व्याकरण के नियमों के अनुसार किसी विशेष क्रम से लगाकर कहते या लिखते हैं, तब उन शब्दों के समूह को 'वाक्य' कहते हैं। वाक्य में कोई एक पूरा भाव या विचार रहता है। यदि भाव या विचार पूरा न हो तो वाक्य भी पूरा नहीं होता—अधूरा रहता है। वाक्य के सम्बन्ध में एक साधारण नियम यह है कि उसमें कम से कम एक कर्त्ता और एक क्रिया हो। यदि हम कहें—'गौ का बच्चा' तो यह वाक्य नहीं होगा; क्योंकि इसमें कोई क्रिया नहीं है। शब्दों के ऐसे समूह को व्याकरण में 'पद' कहते हैं। इसी प्रकार 'राम का भाई,' 'पुस्तक के पन्ने' और 'घर की दीवार' सरीखे शब्द-समूह भी पद ही हैं, वाक्य नहीं हैं; क्योंकि न तो इन शब्दों से कोई पूरा भाव प्रकट होता है न इनमें कोई क्रिया है। वाक्य तो तभी होगा, जब हम कहेंगे—'गौ का बच्चा घास चर रहा है।' 'राम का भाई आया है।' 'पुस्तक के पन्ने मत फाड़ो।' और 'घर की दीवार गिर गई।' आदि। इन रूपों में कोई भाव या विचार भी पूरी तरह से आ गया है और क्रिया भी लगी है। इसी लिए शब्दों के ऐसे समूह 'वाक्य' कहलाते हैं।

ये तो हैं वाक्य की सीधी-सादी आवश्यकताएँ। पर इनके सिवा वाक्य का रूप ठीक रखने के लिए और भी कई बातें आवश्यक होती हैं। उनमें सबसे पहली आवश्यक बात है वाक्य में शब्दों का क्रम ठीक होना। 'राम का भाई आया है' तभी वाक्य कहलावेगा, जब उसके सब शब्द इसी क्रम से रहेंगे; और उसका ठीक ठीक अर्थ भी तभी लोगों की समझ में आवेगा, जब शब्दों का यह क्रम रहेगा। यदि हम कहें—'भाई है का आया राम' या 'राम है भाई आया का' तो न तो इनकी गिनती वाक्यों में होगी, न इनका अर्थ जल्दी किसीकी समझ में आवेगा। इसलिए वाक्य में शब्दों का क्रम ठीक रखना सबसे अधिक आवश्यक होता है। जिन वाक्यों में शब्दों का क्रम ठीक नहीं होता, वे अशुद्ध भी होते हैं और भद्दे भी। इसके सिवा कुछ अवसरों पर या तो उनका कुछ अर्थ ही नहीं होता, या यदि कुछ अर्थ निकले भी तो वास्तविक अर्थ से अलग होता है। समझनेवाला कुछ का कुछ समझ सकता है। हो सकता है कि कुछ अवसरों पर अशुद्ध वाक्य का बिलकुल उलटा अर्थ भी निकले।

किसी वाक्य का बिलकुल उलटा अर्थ निकलना तो बहुत ही बुरा है; पर कुछ का कुछ अर्थ निकलना भी कम बुरा नहीं है। कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें साधारणतः अर्थ तो ठीक निकलता है, पर खींच-तानकर या और किसी प्रकार का प्रयत्न करके कुछ और अर्थ भी लगाया जा सकता है। जिन वाक्यों की बनावट ऐसी होती है, वे भी दूषित वाक्यों में गिने जाते हैं। इसलिए वाक्य सदा ऐसे होने चाहिएँ जिनका एक ही और ठीक अर्थ निकले। उस एक और ठीक अर्थ के सिवा और किसी तरह का अर्थ निकलने की जगह ही उसमें न रहे। वाक्य के ठीक होने के लिए यह बात भी कम आवश्यक नहीं है।

मान लीजिए कि हम कोई ऐसा वाक्य बनाते हैं, जिसका अर्थ

तो ठीक निकलता है, पर जिसे शुद्ध और सुन्दर रूप देने के लिए उसके एक दो शब्दों में कुछ हेर-फेर करने या उनका क्रम बदलकर उन्हें आगे-पीछे करने की आवश्यकता होती है। ऐसे वाक्य शिथिल या ढीले वाक्य कहलाते हैं और इनकी गिनती भी दूषित वाक्यों में होती है। इसलिए वाक्यों का रूप खूब गठा हुआ और चुस्त होना भी बहुत आवश्यक है। जो वाक्य इन सब बातों का पूरा पूरा ध्यान रखकर बनाये जाते हैं, वही अच्छे, सुन्दर और शुद्ध होते हैं।

वाक्य छोटे भी होते हैं और बड़े भी; और इन दोनों के बीच के अर्थात् मझोले भी होते हैं। व्याकरण में छोटे वाक्यों को साधारण वाक्य कहते हैं। इनमें दो या अधिक से अधिक तीन बातें होती हैं। एक तो कोई काम करनेवाला, जिसे कर्त्ता कहते हैं; और दूसरे उसका कोई काम जिसे क्रिया कहते हैं। जैसे—'वह दौड़ता है।' इसमें 'वह' कर्ता है और 'दौड़ता है' क्रिया है। पर जब हम कहते हैं—'वह पुस्तक पढ़ता है।' तब इसमें 'वह' कर्त्ता और 'पढ़ता है' क्रिया के बीच में एक तीसरी चीज 'पुस्तक' आ गई है, जिसे कर्म कहते हैं। पर इस 'पुस्तक' कर्म का भी 'पढ़ता है' क्रिया से ही सम्बन्ध है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की किसी चीज या कर्म की जरूरत सकर्मक क्रियाओं के साथ ही होती है, अकर्मक क्रियाओं के साथ उसके लिए कोई स्थान नहीं होता। वाक्यों की बनावट के प्रसंग में कर्त्ता को 'उद्देश्य' और क्रिया को 'विधेय' कहते हैं। इन दोनों के सिवा उसमें जो और बातें या शब्द होते हैं, वे या तो उद्देश्य से सम्बन्ध रखते हैं या विधेय से। ऊपर के वाक्य में 'पुस्तक' विधेय से सम्बन्ध रखनेवाली चीज है।

इससे कुछ और बड़े वाक्य, जिन्हें हम मझोले वाक्य कह सकते हैं, व्याकरण में 'मिश्र वाक्य' कहलाते हैं। जैसे—'हम तो यही चाहते हैं कि आप अच्छी बातें सीखें।' इसमें विधेय के बाद भी वाक्य

का एक और टुकड़ा या पद लगा है। अथवा 'जो विद्वान् होता है, उसका सभी आदर करते हैं।' इसमें उद्देश्य से पहले वाक्य का एक टुकड़ा या पद लग गया है। तात्पर्य यह है कि जिस वाक्य में प्रधान बात तो एक ही हो, पर उसके साथ एक-दो और छोटी-मोटी बातें भी लगी हों, वह 'मिश्र वाक्य' कहलाता है।

पर कभी-कभी इससे भी कुछ और बड़े वाक्य होते हैं, जिनमें प्रधान बातें भी एक से अधिक होती हैं और हर प्रधान बात के साथ एक या कई छोटी-मोटी बातें भी लगी होती हैं या हो सकती हैं। जैसे—'मैं तो सो गया और वह बैठा हुआ अपना पाठ याद करता रहा।' या 'पहले तुम सब लोगों से बहुत लड़ा करते थे, पर अब धीरे-धीरे तुम्हारी यह आदत छूट रही है।' या 'आप तो जा ही रहे हैं, साथ में इन्हें भी लिये जा रहे हैं।' व्याकरण में ऐसे वाक्य 'संयुक्त वाक्य' कहलाते हैं।

वाक्य जितने छोटे होते हैं, उनमें भूलों के लिए भी उतना ही कम स्थान होता है। साधारण वाक्यों में शायद ही कभी किसी से भूल होती हो। पर मिश्र और संयुक्त वाक्यों में भूलों के लिए अधिक स्थान रहता है। विशेषतः संयुक्त वाक्य लिखने में लोग प्रायः कई प्रकार की भूलें कर जाते हैं। वे वाक्य का आरम्भ किसी और प्रकार से करते हैं, उसका मध्य किसी और प्रकार का रखते हैं और अन्त कुछ ऐसे ढंग से कर जाते हैं कि आदि और मध्य से उसका ठीक मेल नहीं बैठता। अर्थात् वाक्य बनाते समय वे उसका ठीक तरह से निर्वाह नहीं कर पाते। यह भी वाक्यों की बनावट का एक दोष है और बहुत बड़ा दोष है।

हमारे सामने कई प्रकार के भाव, कई प्रकार के विचार और कई प्रकार की घटनाएँ होती हैं। वाक्य बनाते समय हमें उन सबका एक क्रम लगाना पड़ता है—उन्हें एक सिलसिले से सजाना पड़ता

है। जैसे, हम कहते हैं—'आज एक ऐसे सज्जन के दर्शन हुए जो बहुत बड़े विद्वान् होने के सिवा हमारे बहुत ही निकट के सम्बन्धी भी निकले।' इस वाक्य में कई बातें एक साथ आई हैं। यदि सब बातें अलग अलग कही जायँ तो उनका रूप कुछ इस प्रकार का होगा—'आज हमें एक सज्जन के दर्शन हुए। वे बहुत बड़े विद्वान् हैं। वे हमारे निकट के सम्बन्धी निकले।' या हम कहते हैं—'वह ऊपर से सीढ़ियाँ उतरता हुआ और बीच में एक जगह कुछ रुकता हुआ नीचे आया।' इसमें भी कई बातें हैं। वह ऊपर से सीढ़ियों के रास्ते नीचे आने लगा; बीच में एक जगह कुछ रुका और तब वह नीचे आया। पर हम प्रायः इस प्रकार की बातें अलग अलग न कहकर एक साथ ही वाक्य में एक विशेष क्रम से कह जाते हैं। घटनाएँ कई होती हैं, आगे-पीछे होती हैं, कुछ रुक-रुककर या बहुत देर बाद होती हैं। पर हमें इन सब बातों का विचार रखते हुए एक वाक्य में उन्हें प्रकट करने के लिए उनका एक क्रम लगाना पड़ता है। वाक्यों में यही क्रम लगाने का काम बहुत कठिन होता है; और इसी में हमें सबसे अधिक सचेत रहना चाहिए। हमें उनकी बनावट में शुद्धता का भी ध्यान रखना चाहिए और सुन्दरता का भी। और जो बातें जिस क्रम से हुई हों, वे सब उसी क्रम से रखनी भी चाहिएँ।

इससे दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो वाक्य में भावों का क्रम ठीक होना चाहिए और दूसरे उसकी बनावट ठीक और निर्दोष होनी चाहिए। जब वाक्य में ये दोनों बातें आ जायँगी, तब वह देखने में भी सुन्दर हो ही जायगा। जहाँ तक हो सके, हमें एक वाक्य में एक ही भाव और उसी भाव से सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातें प्रकट करनी चाहिएँ। एक ही वाक्य में कई बातें एक साथ प्रकट करने का प्रयत्न करना ठीक नहीं है। यदि ऐसा प्रयत्न किया जायगा तो वाक्य लम्बे तो हो ही जायँगे, सम्भव है, वे अशुद्ध और भद्दे भी हो जायँ।

इसलिए पहले छोटे वाक्य बनाने का पूरा अभ्यास करना चाहिए: और तब बड़े और लम्बे वाक्य बनाने का। और जो वाक्य बनाये जायँ, उनमें सदा इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि जैसा उनका आरम्भ हो, वैसा ही उनका मध्य भी हो और अन्त भी।

अब हम कुछ उदाहरण देकर अपनी बातें और भी स्पष्ट करना चाहते हैं। मान लीजिए, हम कहते हैं—'इतने में दूसरी ओर से कुछ आदमी आ पहुँचे, और उपद्रव करने की चेष्टा की।' यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से इसलिए अशुद्ध है कि इसके पहले अंश में तो अकर्मक क्रिया और दूसरे अंश में सकर्मक क्रिया है; और दोनों क्रियाओं के कर्त्ता 'आदमी' एक ही रूप में हैं। इस वाक्य में यदि 'और' के बाद 'उन्होंने' जोड़ दिया जाय तो वाक्य बिलकुल ठीक हो जायगा। उस दशा में उसका रूप होगा—'इतने में दूसरी ओर से कुछ आदमी आ पहुँचे और उन्होंने उपद्रव करने की चेष्टा की।' जरा सी बात से वाक्य सुन्दर और शुद्ध हो गया।

बहुत कुछ इसी प्रकार की भूल 'उसने उधर देखा और बोला।' में भी है। होना चाहिए—'उसने उधर देखा और कहा।' या 'उसने उधर देखकर कहा।' या 'उसने उधर देखा और वह बोला।' 'हम लोगों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके, गरीबों को सहायता की जाय।' भी कुछ इसी प्रकार के कारणों से अशुद्ध है। इसका शुद्ध रूप होगा—'हम लोगों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके, गरीबों की सहायता करें।' इन सब उदाहरणों में इसी लिए दोष आ गया है कि आदि से अन्त तक इनकी बनावट एक सी नहीं है—इनका ठीक तरह से निर्वाह नहीं हुआ है।

एक और वाक्य लीजिए। 'वहाँ जंगली फल और झरने का पानी पीकर हम लोग आगे बढ़े। इसमें 'पानी' के बाद उससे संबंध रखने-वाली 'पीकर' पूर्व-कालिक क्रिया तो है, पर 'फल' के बाद उससे

सम्बन्ध रखनेवाली कोई क्रिया नहीं है। इस वाक्य में जिस प्रकार 'पानी' के बाद 'पीकर' है, उसी प्रकार 'फल' के बाद 'खाकर' भी होना चाहिए। नहीं तो वाक्य को बनावट से यह अर्थ निकलेगा कि जिस प्रकार हमने पानी पीया था, उसी प्रकार जंगली फल भी पीये थे।

अब कुछ ऐसे उदाहरण लीजिए जिनमें शब्दों का क्रम ठीक नहीं लगा है। 'इस लाठी से जितने तेरे हिमायती हैं, उन सब के सिर तोड़ दूँगा।' इसका ठीक रूप होगा—'तेरे जितने हिमायती हैं, उन सबके सिर इस लाठी से तोड़ दूँगा।' 'यह कहकर मैंने जितने आदमी दूकान में बैठे थे, उन सबको देखा।' इसका ठीक रूप होगा—'यह कहकर मैंने उन सब आदमियों की ओर देखा जो उस दूकान पर बैठे थे।' 'हम उनका मुँह उन्हें सौ रुपये देकर बन्द करना चाहते हैं।' कहने से 'हम उन्हें सौ रुपये देकर उनका मुँह बन्द करना चाहते हैं।' कहना अधिक सुन्दर भी है और अधिक स्पष्ट भी। इसी प्रकार 'अगले दो दिनों में मन्त्रियों से जो बात-चीत चल रही है, उसका निपटारा हो जायगा।' से 'मंत्रियों से जो बात-चल रही है, उसका अगले दो दिनों में निपटारा हो जायगा।' कहना कहीं अच्छा है। और 'उन लोगों ने जिस समय मैं बातें कर रहा था, शोर मचाना शुरू किया।' से 'जिस समय मैं बातें कर रहा था, उस समय उन लोगों ने शोर मचाना शुरू किया।' कहना अधिक अच्छा है।

कभी कभी वाक्य में शब्दों के ठीक स्थान पर न होने के कारण ही उसका और का और अर्थ निकल सकता है। जैसे—'रास्ते में लेटर बक्स में मैंने जो पत्र लिखा था, वह छोड़ दिया।' इसका अर्थ यह होगा कि रास्ते में मैंने लेटर बक्स में पत्र लिखा था। इसलिए इसका ठीक रूप होगा—'मैंने जो पत्र लिखा था, वह रास्ते में लेटर बक्स में छोड़ दिया।'

वाक्य ऐसा होना चाहिए, जिसका अर्थ तुरन्त समझ में आ जाय और अर्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम न हो। 'स्वतन्त्रता के साथ इस देश की गरीबी का अन्त हो जायगा।' का आप क्या अर्थ समझेंगे? यही न कि जब स्वतन्त्रता का अन्त हो जायगा, तब उसके साथ साथ इस देश की गरीबी का भी अन्त हो जायगा? पर इस वाक्य का यह आशय नहीं है। वास्तव में यह वाक्य लिखनेवाले का आशय यह था कि ज्यों ही इस देश को स्वतन्त्रता मिलेगी, त्यों ही इसकी गरीबी का अन्त हो जायगा। इसलिए इस वाक्य का शुद्ध रूप होना चाहिए—'स्वतन्त्रता मिलते ही इस देश की गरीबी का अन्त हो जायगा।' मूल वाक्य अधूरा भी है और भ्रम उत्पन्न करनेवाला भी।

'यदि जाड़े की वर्षा न गड़बड़ाती तो इस साल उपज अच्छी होती।' का पढ़ने या सुननेवाला ठीक ठीक अर्थ न समझ सकेंगे। उनकी समझ में यह बात न आवेगी कि जाड़े की वर्षा स्वयं गड़बड़ा गई, जिससे उपज अच्छी नहीं हुई; या अच्छी उपज न होने का कारण यह है कि जाड़े की वर्षा ने उसे गड़बड़ा दिया। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि इस वाक्य के दो प्रकार के अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि इस वर्ष जाड़े की वर्षा ही कुछ ऐसी गड़बड़ हुई कि उपज अच्छी नहीं हुई। और दूसरा यह कि उपज तो अच्छी हो जाती, पर जाड़े की वर्षा ने उसे गड़बड़ा दिया। यद्यपि फल या परिणाम के विचार से दोनों बातें बहुत कुछ एक ही हैं, फिर भी दोनों में एक विशेष अन्तर है। पहले अर्थ के अनुसार जाड़े की वर्षा स्वयं गड़बड़ा जाती है; और दूसरे अर्थ में वह स्वयं नहीं गड़बड़ाती, बल्कि उपज को गड़बड़ा देती है। और अर्थ के विचार से यह अन्तर बहुत बड़ा है। इस गड़बड़ी का कारण यही है कि 'गड़बड़ाना' क्रिया अकर्मक भी है और सकर्मक भी; और वाक्य से यह

पता नहीं चलता कि उसमें इसका प्रयोग अकर्मक रूप में हुआ है या सकर्मक रूप में।

'उन्होंने एक कांग्रेसी मुसलमान को चोट पहुँचाई और कांग्रेस से अलग हो जाने के लिए धमकाया।' भी बहुत-कुछ इसी प्रकार का वाक्य है। इसके अन्तिम अंश 'कांग्रेस से अलग हो जाने के लिए धमकाया' का तो यही अर्थ हो सकता है कि उन्होंने यह धमकी दी कि हम स्वयं कांग्रेस से अलग हो जायँगे। पर वाक्य का वास्तविक आशय यह नहीं है, बल्कि यह है कि उन्होंने उस कांग्रेसी मुसलमान को ही, जिसे उन्होंने चोट पहुँचाई थी, यह धमकी दी कि यदि तुम कांग्रेस से अलग न हो जाओगे, तो हम तुम्हारे साथ और भी अधिक बुरा व्यवहार करेंगे। इसलिए वाक्य का शुद्ध रूप होगा'………उसे धमकाया कि यदि तुम कांग्रेस से अलग न हो जाओगे तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा।'

'अपनी चंचल जीभ से उसके कन्धे के बाल हिल रहे थे।' ऐसा वाक्य है, जो बनावट अर्थ और व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है। पहले तो इसमें के पहले अंश 'अपनी चंचल जीभ से' का दूसरे अंश 'उसके बाल हिल रहे थे' से कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। यह वाक्य की बनावट का दोष है। दूसरे, 'चंचल जीभ से कन्धे के बाल हिल रहे थे' का कोई अर्थ नहीं होता। और तीसरे, 'अपनी' के कुछ ही बाद 'उसके' व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है। वाक्य का वास्तविक आशय यह है कि उसकी चंचल जीभ बार बार हिल रही थी और उस जीभ के हिलने के कारण ही उसके कन्धे के बाल भी हिल रहे थे। पर वाक्य की बनावट दूषित होने के कारण उससे यह अर्थ नहीं निकलता।

'वन-स्थल खिले हुए पेड़ों के द्वारा आनन्द मना रहा था।' भी बहुत-कुछ भद्दा और निरर्थक-सा वाक्य है। पहली बात तो यह है

कि आनन्द स्वयं मनाया जाता है, किसी के द्वारा नहीं मनाया जाता। फिर, 'खिले हुए पेड़ों के द्वारा आनन्द' मनाने का भी कोई अर्थ नहीं होता। इसी लिए इस वाक्य का कोई ठीक अर्थ नहीं निकलता। वास्तव में वाक्य का आशय यह है कि वन में जो पेड़ खिले हुए थे, उन्हें देखने से ऐसा जान पड़ता था कि वह आनन्द मना रहा है। पर वाक्य की बनावट से यह बात स्पष्ट नहीं होती।

'चारों ओर से चल रही हवा के झोंकों से पेड़ हिल रहे हैं।' ऐसा वाक्य है जो केवल 'चल रही' क्रिया के कारण ही व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध और भद्दा हो गया है। यदि इस 'चल रही' की जगह 'चलनेवाली' या 'चलती हुई' होता तो वाक्य शुद्ध भी हो जाता और उसमें का भद्दापन भी निकल जाता।

कभी कभी वाक्य में एक ही शब्द बार बार कई जगह आकर उसे व्यर्थ बढ़ा भी देता है और भद्दा भी कर देता है। जैसे— 'इतने में कोई चमककर आकर धक्का देकर निकल गया।' में तीन बार 'कर' आया है। यह वाक्य बहुत ही सीधी और अच्छी तरह से इस प्रकार लिखा जा सकता है—'इतने में कोई चमककर आया और धक्का देकर निकल गया।' 'शहर के एक आबाद महल्ले के एक बड़े चौराहे के मोड़ के सामने के मकान में……।' में पाँच जगह 'के' आया है, जिससे वाक्य बहुत भद्दा हो गया है। यह वाक्य सुन्दर रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है— 'शहर के एक आबाद महल्ले में एक बड़ा चौराहा था। एक मोड़ के सामनेवाले मकान में……।'

इस प्रकार की और भी अनेक बातें हैं जो यों देखने में तो बहुत छोटी जान पड़ती हैं पर जिनके कारण बड़ी बड़ी भूलें हो जाती हैं और वाक्य में बहुत भद्दापन आ जाता है। विद्यार्थी इस प्रकार की छोटी छोटी बातों पर ध्यान रखकर बड़ी बड़ी भूलों से बच सकते हैं।

८

संज्ञाएँ

'संज्ञा' का अर्थ है-नाम; और नाम सदा किसी चीज का होता है। हम दाल-रोटी खाते हैं, कपड़े पहनते हैं, पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ते हैं, तरह तरह के खेल खेलते हैं, कुछ काम-धन्धा करते हैं, किसी से बात-चीत करते हैं, किसी से मेल और किसी से लड़ाई-झगड़ा करते हैं; और इसी प्रकार के न जाने कितने दूसरे काम करते हैं। हम रास्ते में चलते हैं तो हमें कहीं मकान मिलते हैं, कहीं गलियाँ और कहीं मैदान। हमें पुरुष, स्त्रियाँ और बालक तथा गाड़ियाँ, घोड़े और दूसरी सवारियाँ दिखाई देती हैं। गाँवों में हमें खेत, पेड़, पगडंडियाँ और झोंपड़ियाँ दिखाई देती हैं। इन वाक्यों में दाल-रोटी, कपड़े, पुस्तकें, समाचारपत्र, खेल, काम-धन्धा, बात-चीत, मेल, लड़ाई-झगड़ा, मकान, पेड़, गलियाँ, मैदान, स्त्रियाँ, पुरुष, गाड़ियाँ, घोड़े और सवारियाँ आदि सभी 'चीजें' हैं। इन चीजों की पहचान के लिए हमने इनके कुछ नाम रख लिये हैं। व्याकरण में यही नाम 'संज्ञा' कहलाते हैं। 'संज्ञा' और 'नाम' वास्तव में एक चीज हैं।

आप पूछ सकते हैं कि दाल-रोटी, मकान, सड़क और खेत आदि तो चीजें हैं, पर स्त्रियाँ, पुरुष और बालक कैसे चीजों में गिने जा सकते हैं? और यदि इन्हें भी किसी तरह 'चीज' मान लें, तो भी

बात-चीत, मेल, लड़ाई-झगड़े और काम-धन्धे को हम कैसे 'चीज' मान सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि चीज या वस्तु का वास्तविक अर्थ बहुत व्यापक है। जो कुछ हमें दिखलाई पड़े या जिसे हम छू या पकड़ सकें, वह तो 'चीज' या 'वस्तु' है ही; पर हम अपने मन से जिसकी कल्पना कर लें, वह भी 'चीज' या 'वस्तु' की व्याख्या में आ जाता है। भूत-प्रेत या मृत्यु आदि ऐसी चीजें हैं, जो देखी, छूई या पकड़ी नहीं जा सकतीं ; पर हमने अपनी बुद्धि से उनकी कल्पना कर ली है। दिन, रात, सवेरा और सन्ध्या आदि देखने में तो आती हैं, पर छूई या पकड़ी नहीं जा सकतीं। फिर भी ये मानी हुई 'चीजें' हैं; और इसी लिए इनके ये नाम भी हैं। हम कहते हैं—'आखिर सच भी कोई चीज है।' 'सच' न तो हमें दिखाई देता है, न हम उसे छू या पकड़ सकते हैं। तब वह 'चीज' कैसे हो गया? इसी लिए कि हमने उसे एक चीज के रूप में मान लिया है। बस मेल और लड़ाई-झगड़ा आदि भी इसी तरह की 'चीजें' हैं।

'पाठशाला' शब्द सुनते ही हमारी आँखों के सामने वह जगह आ जाती है, जहाँ लड़के पढ़ते हैं। 'पानी' का नाम सुनते ही हमारे मन में उस चीज का ध्यान आ जाता है जो हम प्यास लगने पर नित्य पीते हैं और जो हमें नदियों, तालाबों और कूँओं आदि में एकत्र या वर्षा के समय आकाश से बरसता हुआ दिखाई देता है। जब हम कहते हैं—'जाओ, अन्दर से कुरता उठा लाओ।' तब आप कुरता ही लाते हैं, धोती, टोपी, या कोट नहीं लाते। आप जानते हैं कि एक विशेष प्रकार का पहनावा ही 'कुरता' कहलाता है; और वह धोती, टोपी या कोट से बिलकुल अलग तरह का होता है। आपको कुरते के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता। जब हम कहते हैं—'जाओ, गोविन्द को बुला लाओ।' तब आप गोविन्द को ही बुलाकर लाते हैं; राम, श्याम, या कृष्ण को नहीं। यह इसी

लिए कि नाम और वस्तु या व्यक्ति का कुछ ऐसा सम्बन्ध होता है, जो हमें उस वस्तु या व्यक्ति का निश्चय कराता और अनेक प्रकार की भूलों से बचाता है।

यह पुस्तक व्याकरण की नहीं है, इसी लिए हम यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नहीं समझते कि व्याकरण में संज्ञाएँ कितने प्रकार की होती हैं। हम यह भी आशा रखते हैं कि आप व्याकरण पढ़ चुके होंगे और यह जानते होंगे कि संज्ञाएँ, सर्वनाम और विशेषण आदि कितने प्रकार के होते हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य तो यही बतलाना है कि इन सब का प्रयोग करने में लोग कितने प्रकार की भूलें करते हैं; और उन भूलों से आप किस प्रकार बच सकते हैं। इसलिए हम यहाँ संज्ञाओं के भेद आदि बतलाने के फेर में न पड़कर उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भूलों का ही विचार करेंगे; और ऐसी बातें बतलावेंगे, जो व्याकरणों के क्षेत्र के बाहर की हैं।

यदि हम आपसे पूछें कि 'महिला' (या अबला) शब्द का क्या अर्थ है, तो आप झट कह बैठेंगे—स्त्री। फिर यदि हम पूछें कि 'पत्नी' का क्या अर्थ है, तो भी आप कहेंगे—स्त्री। इससे सिद्ध होता है कि एक तो जिसे 'महिला' कहते हैं, उसी को 'स्त्री' कहते हैं; और दूसरे, जिसे 'पत्नी' कहते हैं, उसी को 'स्त्री' कहते हैं। पर कठिनता यह है कि जिसे हम 'महिला' कहते हैं, उसे खाली 'पत्नी' नहीं कहते। हम आपको 'महिला' का अर्थ 'पत्नी' नहीं बतला सकते। हाँ यह बात दूसरी है कि वह महिला भी किसी सज्जन की 'पत्नी' हो। 'महिला' शब्द भले घर की सभी प्रकार की स्त्रियों के सम्बन्ध में बोला जाता है। उनमें व्याही हुई स्त्रियाँ भी हो सकती हैं, बिना व्याही हुई भी और विधवाएँ भी। पर 'पत्नी' सदा व्याही हुई स्त्री को ही कहेंगे; और वह भी उसी अवस्था में जब कि उसके पति का भी उसके साथ उल्लेख हो। जैसे—'ये हमारे बड़े भाई की पत्नी हैं।' या 'ये हमारे

एक मित्र की पत्नी हैं।' ऐसे अवसरों पर हम 'पत्नी' की जगह 'महिला' या 'अवला' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकेंगे। अब 'स्त्री' शब्द लीजिए। हम 'महिला' को भी 'स्त्री' कह सकते हैं और 'पत्नी' को भी। पर जब हम हर जगह 'महिला' शब्द के स्थान पर 'पत्नी' शब्द का और 'पत्नी' शब्द के स्थान पर 'महिला' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते, तब यह सिद्ध होता है कि 'स्त्री' शब्द के दो अर्थ हैं—एक महिला और दूसरा पत्नी। और इसी लिए हमें यह सोचने की आवश्यकता होती है कि हमें कहाँ 'महिला' का, कहाँ 'स्त्री' का और कहाँ 'पत्नी' का प्रयोग करना चाहिए।

पहले हम कई अवसरों पर कह आये हैं कि एक शब्द के कई कई अर्थ होते हैं; और हमें उन शब्दों का प्रयोग करने के समय उनके ठीक अर्थ का ध्यान रखना चाहिए। यहाँ हम इतना और बतला देना चाहते हैं कि कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो यों देखने में तो एक ही से अर्थवाले होते हैं, फिर भी जिनके अर्थों में थोड़ा-बहुत भेद होता है। ऊपर 'महिला', 'अबला', 'पत्नी' और 'स्त्री' के सम्बन्ध में जो बातें कही गई हैं, वे अर्थों के इसी प्रकार के सूक्ष्म भेदों के आधार पर हैं। शब्दों का प्रयोग करते समय जहाँ हम इस प्रकार के सूक्ष्म भेदों का विचार नहीं करते, वहीं हमसे भाषा सम्बन्धी बड़ी बड़ी भूलें होती हैं। इसलिए जो लोग ऐसी भूलों से बचना चाहते हों, उन्हें शब्दों और उनके अर्थों के सूक्ष्म भेदों का सदा पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए।

जिस प्रकार के सूक्ष्म भेद महिला, स्त्री और पत्नी के अर्थों में हैं, बहुत कुछ उसी प्रकार के सूक्ष्म भेद 'खेद' और 'दुःख' सरीखे शब्दों में भी हैं। 'खेद' हमारे मन की वह अवस्था है, जिसमें उसकी प्रसन्नता कुछ कम हो जाती है और उसमें एक तरह की उदासी आ जाती है। यदि हम कहें—'मुझे खेद है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर

नहीं दिया।' या 'मुझे खेद है कि आज मैं आप से भेंट न कर सकूँगा।' तो यह 'खेद' का ठीक प्रयोग होगा। 'दुःख' में भी मन की प्रसन्नता घटती है, पर 'खेद' की अपेक्षा बहुत अधिक घटती है। 'दुःख' वास्तव में 'सुख' का बिलकुल उलटा है। सुख के समय हमारे मन में जितनी प्रसन्नता होती है, 'दुःख' के समय हमारे मन में उतना ही कष्ट होता है। 'दुःख' में 'खेद' से एक बात और बढ़कर होती है। हम 'दुःख' से छुटकारा पाना चाहते हैं और उससे दूर भागते हैं। हम चाहते हैं कि जितनी जल्दी हो सके, हमारे दुःख का अन्त हो जाय। इसी लिए यह कहना तो ठीक है—'आपके पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ।' पर यह कहना ठीक नहीं है—'आपका पत्र न मिलने से मैं बहुत दुःखी हूँ।' 'दुःख' से भी बढ़कर बुरी मन की एक और अवस्था होती है, जिसे 'शोक' कहते हैं। यह 'शोक' किसी परम आत्मीय या प्रिय की मृत्यु से ही होता है। इसी लिए किसी बहुत बड़े आदमी की मृत्यु होने पर कहा जाता है—'उनकी मृत्यु से सारे नगर में शोक छा गया।' पर यदि हम कहें—'मुझे इस बात का शोक है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया।' तो समझदार लोग हमारी हँसी ही उड़ावेंगे।

साधारणतः लोग यह समझते हैं कि 'प्रार्थना' और 'निवेदन' में कोई अन्तर नहीं है; और इसी लिए वे एक की जगह दूसरे शब्द का प्रयोग कर जाते हैं। पर यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो दोनों में बहुत अन्तर है। जब हम अपने से किसी बड़े से कोई ऐसा काम कराना चाहते हैं जो उसकी शक्ति में होता है, तब हम उस काम के लिए उससे जो कुछ कहते हैं, वह 'प्रार्थना' कहलाता है। हम अपने गुरुजी से प्रार्थना करते हैं—'आप हमें एक दिन की छुट्टी दें।' अपने बड़े भाई या पिताजी से प्रार्थना करते है—'आप हमें पुस्तकें या कपड़े ले दें।' अपने भाई-बन्दों और मित्रों से प्रार्थना करते हैं—'आप

हमारे छोटे भाई के विवाह के दिन हमारे यहाँ आने की कृपा करें।' और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—'आप हमें सब कष्टों से बचावें और हमें अच्छे रास्ते पर चलावें।' प्रार्थना करते समय हमारे मन में कोई काम किसी से कराने की इच्छा होती है। 'निवेदन' में प्रार्थनावाली और सब बातें तो होती या हो सकती हैं, पर वह 'इच्छा' वाली बात नहीं होती। उसमें अपने विषय की कोई बात किसी बड़े के सामने रख दी जाती है। इसी लिए हम कहते हैं—'मुझे जो कुछ निवेदन करना था, वह मैं कर चुका। अब आपकी जो इच्छा हो, वह करें।' या 'पहले मेरा सारा निवेदन सुन लें, और तब जो कुछ करना हो, वह करें।' इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि 'निवेदन' में अपनी ओर से कोई काम करने के लिए नहीं कहा जाता। उस सम्बन्ध में कोई काम करने या न करने का भार उसी पर छोड़ दिया जाता है, जिससे निवेदन किया जाता है। इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—'प्रार्थना है कि कल मेरे यहाँ प्रीतिभोज होगा।' या 'प्रार्थना है कि आज मेरे भाई का शरीर अच्छा नहीं है।' हाँ, यह कहना ठीक है—'प्रार्थना है कि कल मेरे यहाँ प्रीति-भोज में पधारने की कृपा करें।' या 'प्रार्थना है कि मेरे भाई के लिए कुछ दवा भेज दें।'

बहुत से लोग भूल से यह समझते हैं कि 'आकार' और 'रूप' दोनों एक ही चीज हैं। पर वास्तव में इन दोनों में बहुत अन्तर है। 'आकार' में किसी चीज की केवल लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई आदि आती है। बल्कि हम कह सकते हैं कि कोई चीज देखने पर हमारे सामने उसकी जो बाहरी या ऊपरी रेखाएँ आती हैं, वही मिलकर 'आकार' कहलाती हैं। उसकी लम्बाई-चौड़ाई या बाहरी रेखाओं आदि के बीच जो वर्ण या उतार-चढ़ाव आदि होते हैं, वे 'आकार' के अन्तर्गत नहीं आते। पर इन सब चीजों के मेल से जो आकृति बनती है, वह 'रूप' है। 'रूप' में लम्बाई-चौड़ाई, वर्ण या रंग, उतार-चढ़ाव

और उभार आदि सभी आ जाते हैं। इसी लिए हम कहते हैं—'उसका आकार लम्बा है' या 'स्थूल है' आदि; और 'उसका रूप सुन्दर(या देखने में अच्छा) है।' आदि। और इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—'आज यह पुस्तक छपे आकार में देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।' यहाँ 'आकार' की जगह 'रूप' होना चाहिए। और इसी लिए यह कहना भी ठीक नहीं है—'इस बार पुस्तक लम्बे रूप में छपी है।' यहाँ 'रूप' की जगह 'आकार' होना चाहिए।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसी प्रकार के अन्तर 'खेल' और 'खेलवाड़' में, 'थाना' और 'कोतवाली' में, 'लिपि' और 'भाषा' में, 'बोली' और 'भाषा' में, 'लेख' और 'लिखावट' में, बाजार' और 'हाट' में, 'चीज' और 'सामान' में, 'शिक्षा' और 'अध्ययन' में, 'राजा' और 'शासक' में, 'प्रजा' और 'निवासी' में, 'नाती' और 'पोते' में, 'अंश' और 'भाग' में, 'आचरण' और 'व्यवहार' में, 'सचाई' और 'ईमानदारी' में, 'पाजीपन' और 'दुष्टता' में, 'मकान' और 'कोठी' में, 'छज्जे' और 'बरामदे' में, 'पेड़' और 'पौधे' में, 'घोड़े' और 'टट्टू' में, 'छड़ी' और 'डण्डे' में, तथा इसी प्रकार के दूसरे सैकड़ों-हजारों शब्दों में हैं। यों देखने में हम भले ही समझ लें कि दो शब्द प्रायः एक से हैं, पर विचार करने पर हमें उनमें बहुत कुछ अन्तर दिखाई देगा। हम जहाँ 'लज्जा' का प्रयोग कर सकते हैं, वहाँ 'संकोच' का प्रयोग नहीं कर सकते; और जहाँ 'आकांक्षा' रख सकते हैं, वहाँ 'इच्छा' नहीं रख सकते। इसी लिए हमें संज्ञाओं का प्रयोग बहुत ही समझ-बूझकर और सावधानी से करना चाहिए।

मान लीजिए कि हमें दो ऐसी पुस्तकें मिलती हैं, जिनके विषय आपस में बहुत कुछ मिलते हैं। पर उनके सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते—'इन दोनों पुस्तकों में बहुत मेल है।' हमें कहना पड़ेगा—'इन पुस्तकों में बहुत कुछ समानता है'। पर यदि दो लड़कों

का आपस में बहुत मेल-जोल दिखाई दे, तो हम अवश्य कह सकते है—' इन दोनों लड़कों में बहुत मेल है।' 'ग्रामीणों और डाकुओं में युद्ध' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि' युद्ध' सेनाओं की लड़ाई को कहत हैं, साधारण आदमियों की लड़ाई को नहीं। इसलिए यहाँ 'युद्ध'की जगह'लड़ाई' होना चाहिए।'चुटकी वजाते ही गिलहरी पेड़ की छत पर चढ़ गई।' कहने से 'पेड़ के ऊपरी भाग पर पहुँच गई' कहना ही ठीक है। 'वह लड़का डाक्टरी परीक्षा के लिए भेजा गया है।' में 'परीक्षा' की जगह 'जाँच' होना चाहिए। हाँ—'इस वर्ष सौ लड़के परीक्षा में वैठे हैं।' कहना विलकुल ठीक है। यहाँ 'परीक्षा' की जगह 'जाँच' का प्रयोग नहीं किया जा सकता।'इस वट-वृक्ष की छाया में नगर की सारी जन-संख्या अच्छी तरह विश्राम कर सकती है।' में 'जन-संख्या' का प्रयोग ठीक नहीं है। उसकी जगह 'निवासी' या इसी प्रकार का और कोई शब्द होना चाहिए। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है—'दस वर्षों में हमारे नगर की जन-संख्या दूनी हो गई है।''इस समय हमारी आयु बीस वर्ष की है।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'आयु' में जन्म से मृत्यु तक का सारा समय आ जाता है। यहाँ 'आयु' की जगह 'अवस्था' होना चाहिए। हाँ यदि कोई आदमी साठ वर्ष की अवस्था में मरे, तो हम कह सकते हैं—'उसने साठ वर्ष की आयु पाई।''यदि नदी का पानी कुछ और बढ़ा तो सारे गाँव के डूब जाने का सन्देह है।' में 'सन्देह' की जगह 'आशंका' या 'भय' होना चाहिए।

हमें संज्ञाओं के चुनाव में तो सतर्क रहना ही चाहिए, उनके प्रयोग में भी सतर्क रहना चाहिए। यह कहना ठीक नहीं है—'तभी से देश के गले में पराधीनता की बेड़ियाँ पड़ गईं।' क्योंकि बेड़ियाँ पैरों में पड़ती हैं, गले में नहीं। 'यह वात विश्वास की जाने लगी है कि······।' के बदले में हमें कहना चाहिए—'इस बात पर विश्वास

किया जाने लगा है कि……।' और 'ऐसा करना मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था।' में या तो 'निश्चय' की जगह 'निश्चित' होना चाहिए, या वाक्य का रूप होना चाहिए—'मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि ऐसा करूँगा।'

१

सर्वनाम

साधारणतः हिन्दी में 'सर्वनाम' उन शब्दों को कहते हैं. जो वाक्यों में संज्ञाओं की जगह, वल्कि यों कहना चाहिए कि व्यक्तियों या पदार्थों के नामों की जगह आते हैं। सर्वनाम की आवश्यकता साधारणतः इसी लिए होती है कि हमें वार वार एक ही संज्ञा का प्रयोग न करना पड़े। जैसे, हम यह नहीं कहते—"आज मैं माधव के घर गया था। माधव घर पर नहीं था। माधव अपने चाचा के यहाँ गया था,क्योंकि माधव के चाचा वीमार थे।' हम कहते हैं—'आज मैं माधव के घर गया था। वह घर पर नहीं था। वह अपने चाचा के यहाँ गया था, क्योंकि उसके चाचा वीमार थे।'. अथवा—'उस समय वह अपने चाचा के यहाँ गया था, क्योंकि वे वीमार थे।' पहले उदाहरण में तो चार वार 'माधव' शब्द आया है; पर दूसरे प्रकार में एक ही वार आया है। वाकी स्थानों में 'वह' और 'उसका' आदि शब्द आये हैं। दूसरे प्रकार का जो दूसरा रूप ऊपर दिया गया है, उसमें भी दूसरी वार 'चाचा' की जगह 'वे' आया है। इसके सिवा दोनों उदाहरणों का आरम्भ जिस 'मैं' शब्द से हुआ है, वह भी सर्वनाम ही है; क्योंकि वह वोलनेवाले का सूचक है और उसके नाम की जगह आया है। हमने

किसी व्यक्ति या वस्तु का नाम (संज्ञा) न लेकर जिन शब्दों से काम चलाया है, वे सब शब्द सर्वनाम हैं। सर्वनाम का अथ ही है—जो सबका नाम हो। जिस प्रकार हम अपने आपको 'हम' या 'मैं' कहते हैं, उसी प्रकार सब लोग अपने आपको 'हम' या 'मैं' कह सकते हैं। नाम की जगह आनेवाले इन शब्दों का प्रयोग सभी लोग करते हैं। और इस प्रकार के शब्द नाम या संज्ञा की जगह आते हैं, इसलिए संस्कृत व्याकरण में 'सर्वनाम' भी संज्ञा का ही एक भेद या प्रकार माना जाता है।

पर हम बात-चीत करते समय या लिखते समय कभी यह नहीं कहते या लिखते—'हम अभी एक संज्ञा का प्रयोग कर चुके हैं, इसलिए अब आगे इसकी जगह हम सर्वनाम का प्रयोग करेंगे।' बिना हमारे कहे या बतलाये हुए सर्वनाम आपसे आप हमारे वाक्यों में आते रहते हैं और सुननेवाले उनका अर्थ समझते चलते हैं। इसके सिवा कुछ अवसरों पर हम बिना किसी संज्ञा का प्रयोग किये ही सर्वनाम का प्रयोग कर जाते हैं। जैसे—'जरा दीया-सलाई लाकर इसे जला दो।' ऐसे अवसरों पर सुननेवाला अवसर और प्रसंग से ही समझ लेता है कि 'इसे' से हमारा किस वस्तु से अभिप्राय है। हो सकता है कि हम दीया जलाने के लिए कहते हों। यह भी हो सकता है कि हम रद्दी कागज जलाने के लिए कहते हों; या हो सकता है कि हम रसोई बनाना या दूध गरम करना चाहते हों और चूल्हा जलाने के लिए कहते हों। इससे सिद्ध होता है कि सर्वनाम सदा संज्ञाओं के स्थान पर ही नहीं आते। हाँ, वे संज्ञाओं के सूचक अवश्य होते हैं–वे किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं। सुनने या पढ़नेवाले अवसर और प्रसंग के अनुसार समझ लेते हैं कि हमारा मतलब किस चीज से है।

हम किसी दूकान पर जाते हैं और दूकानदार से कोई चीज

माँगते हैं। वह कहता है—'वह तो मेरे पास नहीं है।' हम समझ लेते हैं कि उसका 'वह' उसी चीज का सूचक है, जो हमने उससे माँगी थी। हम आपसे कोई पुस्तक माँगते हैं। आप कहते हैं—'वह तो खो गई।' या 'वह मेरे एक मित्र ले गये हैं।' हम समझ लेते हैं कि 'वह' से आपका अभिप्राय उसी पुस्तक से है, जो हम आपसे लेना चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर यह समझने में कोई कठिनता नहीं होती कि वाक्य में आया हुआ सर्वनाम किस वस्तु या व्यक्ति का सूचक है।

पर कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें सुनने या पढ़नेवालों को कुछ भ्रम हो सकता है। मान लीजिए, हम कहते हैं—'मीना जाति के लोगों के बाल बहुत लम्बे होते हैं। वे राजपूताने भर में फैले हुए हैं।' इससे आप क्या अभिप्राय समझेंगे? यह कि मीना लोग राजपूताने भर में फैले हुए हैं? या उनके बाल? पर इस वाक्य की विलक्षण बनावट से यह अर्थ निकलता या निकल सकता है कि मीना जाति के लोगों के बाल ही राजपूताने भर में फैले हुए हैं। व्याकरण के नियम के अनुसार पहले वाक्यांश में आये हुए कर्त्ता के साथ ही दूसरे वाक्यांश में आये हुए सर्वनाम का सम्बन्ध होता है, कर्म के साथ नहीं होता। फिर भी ऊपर दिये हुए वाक्य की बनावट कुछ ऐसी है कि व्याकरण का यह नियम न जाननेवालों को भ्रम हो सकता है। वास्तव में भ्रम इसलिए होता है कि बीच में लम्बे बालों का जिक्र आ गया है। इसलिए इस वाक्य का अच्छा रूप होगा—'मीना जाति के लोग राजपूताने भर में फैले हुए हैं। उनके बाल लम्बे होते हैं।' यदि हम कहें—'इन्द्र उन दानवों को नहीं जीत सकते। आप चलकर उनका नाश करें।' तो ऊपर बतलाये हुए नियम के अनुसार इस वाक्य का अर्थ यही होगा कि कहनेवाला इन्द्र का ही नाश कराना चाहता है। यदि वह दानवों का नाश कराना चाहता हो, तो उसे कहना

चाहिए—'वे दानव इन्द्र से नहीं जीते जा सकते। आप चलकर उन-का नाश कर।' या 'इन्द्र उन दानवों को नहीं जीत सकते। आप चल-कर उन दानवों का नाश करें।' या 'उनका नाश करने में इन्द्र की सहाय-ता करें।' एक और वाक्य लीजिए। 'उन्होंने चीन से शस्त्र भेजने की व्यवस्था की थी, पर वे बीच में ही पकड़ लिये गये।' नियम के अनु-सार इसका अर्थ यही होगा कि जिन्होंने शस्त्र भेजने की व्यवस्था की थी, वही बीच में पकड़े गये और शस्त्र न भेज सके। इसका यह अर्थ नहीं होगा कि उनके भेजे हुए शस्त्र बीच में पकड़े गये। फिर भी यदि बीच में शस्त्रों का जिक्र आ जाने के कारण वाक्य की बना-वट से सन्देह की कुछ भी जगह दिखाई दे तो हम कह सकते हैं—'वे स्वयं बीच में पकड़े गये।' यदि हम कहें—'यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पापों के क्या फल होंगे और वे उन से कहाँ तक बच सकेंगे।' तो इससे स्पष्ट नहीं होता कि 'उनसे' से हमारा अभि-प्राय 'पापों' से है या उनके 'फल' से। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने पापों से कहाँ तक बच सकेंगे या उनके फलों से। यह ठीक है कि 'उनसे' वास्तव में 'फल' के तुरन्त बाद आया है और इसी लिए वह 'फल' की ओर ही संकेत करता है। फिर भी वाक्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसके अन्तिम अंश का रूप होना चाहिए—'वे उन फलों (या यदि हमारा अभि-प्राय हो तो—पापों) से कहाँ तक बच सकेंगे।' इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि सर्वनामों का प्रयोग करते समय हमें वाक्य की बनावट पर बहुत ध्यान रखना चाहिए; और उसका रूप ऐसा नहीं रखना चाहिए, जिससे अर्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह हो। यदि कुछ भी सन्देह हो सकता हो तो सर्वनामों के भरोसे ही न रहकर संज्ञाओं का भी फिर से प्रयोग करना चाहिए। केवल सर्वनामों का प्रयोग उसी अवस्था में और उसी रूप

में होना चाहिए, जिसमें पढ़नेवालों को कुछ भी भ्रम न हो।

सर्वनामों के सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य और भी कई बातें हैं। पहली बात यह है कि वाक्यों में एक ही व्यक्ति, वस्तु या घटना के सूचक सब सर्वनाम एक हों या एक प्रकार के हों। 'मैं' जिस प्रकार का सर्वनाम है, 'हम' उस प्रकार का सर्वनाम नहीं है; और 'वह' जिस प्रकार का सर्वनाम है, 'वे' उस प्रकार का सर्वनाम नहीं है। 'मैं' और 'वह' एक-वचन हैं; 'हम' और 'वे' बहुवचन। यह बात दूसरी है कि कुछ अवसरों पर 'हम' और 'वे' अनेक व्यक्तियों के सूचक न हों, बल्कि केवल अपना बड़प्पन दिखलाने या दूसरों का आदर करने के लिए उनका प्रयोग हुआ हो। ऐसे शब्द कुछ अवसरों पर आदरार्थक होते हैं, पर होते बहुवचन ही हैं। 'मैं सवेरे आपके यहाँ गया था। पर आप घर पर नहीं थे, इसलिए हम लौट आये।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इसमें पहले 'मैं' आया है और बाद में 'हम'। 'यद्यपि आप वहाँ आधी रात के समय पहुँचे थे, तो भी बहुत से लोग वहाँ बैठे हुए उनकी राह देख रहे थे।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इसमें पहले एक व्यक्ति के लिए 'आप' आया है और बाद में उसी व्यक्ति के लिए 'उनके' आया है। इस 'उनके' की जगह भी 'आपके' ही होना चाहिए। 'यह बात इतनी स्पष्ट है कि उसको सब लोग समझ सकते हैं।' में 'उसको' की जगह 'इसको' या 'इसे' होना चाहिए। 'गंगा जी और उसकी सहायक नदियाँ।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि पहले तो हम गंगा का आदर करने के लिए उनके साथ 'जी' लगाते हैं और तब 'उसके' कह जाते हैं। या तो हमें कहना चाहिए—'गंगा और उसकी सहायक नदियाँ।' या 'गंगाजी और उनकी सहायक नदियाँ।'

सर्वनामों का निर्वाह स्वयं उसके रूप और वचन तक ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके बाद आनेवाली क्रियाओं तक भी होना

चाहिए। 'हम आऊँगा', 'तुम जायगा' और 'वे चला गया' सरीखे वाक्य कितने भद्दे जान पड़ते हैं! यह ठीक है कि पुरानी या आरम्भिक हिन्दी में हमें 'आप क्या दोगे?' और 'आप जो कुछ कहो, सो करूँ।' सरीखे प्रयोग मिलते हैं, पर अब ये अच्छे या शुद्ध नहीं माने जा सकते। इन्हें आरम्भिक काल के प्रयोग समझकर छोड़ देना चाहिए और इनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। हमें सदा—'आप क्या देंगे?' और 'आप जो कहें, वह करूँ।' सरीखे प्रयोग ही करने चाहिएँ।

प्रायः लोग सर्वनामों में वचन का ठीक तरह से निर्वाह नहीं करते और कई प्रकार की भूलें करते हैं। बहुत से लोग एक-वचन में भी और बहुवचन में भी 'यह' और 'वह' का ही प्रयोग करते हैं। पर आज-कल 'यह' का बहु० रूप 'ये' और 'वह' का 'वे' ही अच्छा समझा जाता है। 'यह सब पुस्तकें उठा ले जाओ।' से 'ये सब पुस्तकें उठा ले जाओ।' और 'वह लोग आ गये।' से 'वे लोग आ गये।' आदि प्रयोग ही आज-कल अधिक अच्छे समझे जाते हैं।

कभी-कभी लोग भूल से कुछ विशेष प्रकार के वाक्यों में व्यर्थ ही सर्वनाम का प्रयोग कर जाते हैं। जैसे—'उनकी लिखी हुई सूचना, जिस पर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी, उसको देखकर उन्होंने कहा......।' इस वाक्य में 'उसको' का प्रयोग ठीक नहीं है। साधारणतः हम यही कहते हैं—'उनकी लिखी हुई सूचना देखकर उन्होंने कहा......।' इस वाक्य के बीच में 'जिसपर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी' आ जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए वाक्य का रूप होना चाहिए—'उसकी लिखी हुई सूचना, जिसपर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी, देखकर उन्होंने कहा......।'

कुछ अवस्थाओं में लोग सर्वनामों के सम्बन्ध में एक और प्रकार की भूल कर जाते हैं। वाक्य में जो सर्वनाम चाहिए, वह न रखकर

वे कोई और अथवा किसी और प्रकार का सर्वनाम रख जाते हैं। जैसे—'उनकी अवस्था इतनी खराब हो गई है कि उसे कहा नहीं जा सकता।' पहले तो इस वाक्य में 'उसे' होना ही नहीं चाहिए। पर यदि सर्वनाम रखना ही चाहें तो लिखना चाहिए—'वह कहीं नहीं जा सकती।' इसी प्रकार 'तब उन्हें यह भी समझ में आ जायगा।' में 'उन्हें' का प्रयोग अशुद्ध है। इसकी जगह 'उनकी' होना चाहिए : और वाक्य का रूप होना चाहिए—'तब उनकी समझ में यह भी आ जायगा।' 'सोचते सोचते उसे ध्यान में आया।' में 'उसे' की जगह 'उसके' होना चाहिए।

प्रायः लोग 'यह'-'वह','इसका'-'उसका' और 'इनके'-'उनके' आदि के प्रयोग में कई प्रकार की भूलें करते हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान में रखने योग्य मुख्य सिद्धान्त यह है कि प्रायः पास की चीजों का उल्लेख करते समय या वर्तमान काल की क्रियाओं आदि के साथ तो 'यह', 'इसका' और 'इनके' आदि का प्रयोग होता है: और दूर की चीजों का उल्लेख करते समय या भूत काल के वर्णनों में 'वह', 'उसका' और 'उनके' आदि का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए हम कहेंगे—'मैं आपको यह पत्र जो इस रूप में लिख रहा हूँ, इसका कारण यह है कि......।' और 'मैंने आपको वह पत्र जो उस रूप में लिखा था, उसका कारण यह था कि......।' इस प्रकार वाक्यों में सर्वनामों का निर्वाह आदि से अन्त तक ठीक तरह से हो जाता है और उनमें किसी तरह की गड़बड़ी नहीं होने पाती।

कभी कभी लोग ऐसे अवसरों पर भी सर्वनाम का प्रयोग नहीं करते, जहाँ उनका प्रयोग आवश्यक होता है। इससे वाक्य अशुद्ध भी हो जाता है और भद्दा भी। जैसे—'जुलूस कचहरी गया और वहाँ प्रदर्शन किया।' होना चाहिए—'जलूस कचहरी गया और वहाँ उसने प्रदर्शन किया।' इसी प्रकार 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और

कहा।" भी सर्वनाम न होने के कारण अशुद्ध और भद्दा है। होना चाहिए—'वह, वहाँ जाकर बैठ गया और उसने कहा।' या 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और बोला।'

साधारणतः लोग 'मैं, 'मेरा' और 'अपना' या 'हम' 'हमारा' और 'अपना' का प्रयोग करने में भी बहुत भूल करते हैं। जैसे—'इस विषय में मेरे विचार मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूँ।' या 'मेरी माता की मृत्यु हो जाने पर मैं अपने पिता के पास सोता था।' इनमें से पहले वाक्य में 'मेरे' की जगह 'अपने' और दूसरे वाक्म में 'मेरी' की जगह 'अपनी' होना चाहिए। ये तो ऐसे उदाहरण हैं, जिनकी भूल बहत ही स्पष्ट है और जल्दी लोगों के ध्यान में आ जाती है। पर यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो ठीक ठीक यह बतलाना बहुत ही कठिन है कि कहाँ 'मेरा' या 'हमारा' होना चाहिए और कहाँ 'अपना'। 'मेरी पुस्तक मेरे पास है।' और 'मैं अपनी पुस्तक अपने पास रखता हूँ।' 'मैं यह नहीं चाहता कि मेरी पुस्तक दूसरों के हाथ में जाय।' और 'मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपनी पुस्तक किसी को दूँ।' 'मेरी पुस्तक मेरी मेज पर रख दो।' और 'मेरी पुस्तक अपनी मेज पर रख दो।' 'मैं अपने भाई के साथ जाऊँगा।' और 'मेरा भाई मेरे साथ जायगा।' 'मेरी पुस्तकें मेरे मित्र के पास हैं।' और 'मैं अपने मित्र का साथ दूँगा।' सरीखे प्रयोग हैं तो बिलकुल शुद्ध, पर इनके सम्बन्ध में ठीक ठीक यह बतलाना बहुत ही कठिक है कि इनमें से कुछ स्थानों पर 'मेरा' 'मेरे' आदि क्यों आये हैं और कुछ स्थानों पर 'अपना' 'अपने' आदि क्यों। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है—'मेरी आँखों पर मेरा ही विश्वास नहीं होता था।' और 'मेरी आँखों पर अपना ही विश्वास नहीं होता था।' सरीखे प्रयोग अशुद्ध हैं; और 'अपनी आँखों पर मेरा ही विश्वास नहीं होता था।' प्रयोग शुद्ध है। 'मेरा नौकर मेरे भाई के यहाँ गया

है।' और 'मेरा नौकर अपने भाई के यहाँ गया है।' या 'मैंने नौकर को अपने भाई के यहाँ भेजा है।' और 'मैंने नौकर को उसके भाई के यहाँ भेजा है।' में जो अन्तर है, वह स्पष्ट है। कुछ लोग 'हमारा' के अर्थ में भी 'अपना' का प्रयोग करते हैं। जैसे—'वह डाकिया जो नित्य यहाँ आकर अपनी चिट्ठियाँ दे जाया करता था।' इस प्रकार के प्रयोग भी अशुद्ध और भ्रामक होते हैं। अभी तक इस सम्बन्ध के पूरे पूरे नियम नहीं बने हैं; इसलिए हम यही कहना चाहते हैं कि ऊपर जो ठीक उदाहरण दिये गये हैं, उन्हीं के अनुसार विद्यार्थी भी ठीक प्रयोग करने का प्रयत्न करें। अधिक ज्ञान और अच्छा अभ्यास होने पर वे आप ही यह निश्चय कर सकेंगे कि कहाँ 'मेरा' और 'मेरे' आदि होने चाहिएँ; और कहाँ 'अपना,' 'अपने' आदि। पर हाँ ये प्रयोग ऐसे अवश्य हैं, जिनके सम्बन्ध में विद्यार्थियों को सदा बहुत सचेत रहना चाहिए; और जहाँ तक हो सके, शुद्ध प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सर्वनामों के प्रयोग का साधारण नियम यह है कि वाक्य में पहले संज्ञा आती है; और तब उसके बाद उससे सम्बन्ध रखनेवाला सर्वनाम आता है। पर कुछ लोग वाक्य में पहले ही सर्वनाम रखकर तब आगे चलकर संज्ञा का प्रयोग करते हैं। जैसे—'उसके पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने गोविन्द से पूछा।' ऐसा नहीं करना चाहिए। वाक्य में पहले संज्ञा रखकर तब सर्वनाम रखना चाहिए; और इसी लिए उक्त वाक्य का रूप होना चाहिए—'गोविन्द के पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने उससे पूछा।' कभी कभी लोग संज्ञा के बाद भी फिर वही संज्ञा ले आते हैं और विशेषण नहीं रखते। जैसे—'वाक्य और वाक्य के भेद।' ऐसा करना भी ठीक नहीं है। लिखना चाहिए—'वाक्य और उसके (या उनके) भेद।' पर कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें संज्ञा के बाद भी वही संज्ञा

रखना आवश्यक होता है। जैसे—'मेरे पास जो धेला-पैसा या धेले-पैसे की सम्पत्ति है, वह सब मैं तुम्हें दे जाऊँगा।' इस वाक्य में पहले जो 'धेला-पैसा' आया है, वह अलग चीज है; और बाद में जो 'धेले-पैसे की सम्पत्ति' पद आया है, वह अलग चीज है। इसी लिए इसमें 'धेला-पैसा' और 'धेले-पैसे' आया है। यह वाक्य इस रूप में लिखना ठीक नहीं होगा—'मेरे पास जो धेला-पैसा या उसकी सम्पत्ति है।' ऐसे वाक्य का अर्थ यह होगा कि मेरे पास जो सम्पत्ति है, उसका मालिक मैं नहीं हूँ, बल्कि 'धेला-पैसा' है। और इसी विचार से वाक्य का शुद्ध रूप होगा—'मेरे पास जो धेला-पैसा या धेले-पैसे की सम्पत्ति है ...।'

सर्वनामों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक बात यह भी है कि 'मैं', 'तू', और 'आप' तो सदा सर्वनाम ही रहते हैं, पर और सर्वनाम किसी संज्ञा के पहले आनेपर विशेषण हो जाते हैं। उस अवस्था में वे सर्वनाम नहीं बल्कि 'सार्वनामिक विशेषण' कहलाते हैं। जैसे—'आपने जिस आदमी को बुलाया था, वह आ गया।' में तो 'वह' सर्वनाम है; पर 'वह आदमी अब आना चाहता है।' में 'वह' सार्वनामिक विशेषण है। यदि हम कहें—'यह पुस्तक किसी को दे देना।' तो इसमें का 'किसी' सर्वनाम होगा। पर यदि हम कहें—'यह पुस्तक किसी विद्यार्थी को दे देना।' तो इसमें का 'किसी' सार्वनामिक विशेषण हो जायगा।

१०

विशेषण

यदि किसी चौकी पर एक ही कलम और एक ही दवात रक्खी हो और आपसे कहा जाय—'चौकी पर से कलम-दवात उठा लाओ।' तो आप झट जाकर दोनों चीजें उठा लावेंगे। पर यदि उसी चौकी पर पाँच-सात पुस्तकें भी हों और आपसे कहा जाय—'चौकी पर से पुस्तक ले आओ।' तो आप कौन सी पुस्तक लावेंगे? उस समय आपको पूछना पड़ेगा—'कौन सी पुस्तक?' जब आपसे कहा जायगा—'छोटी (या बड़ी) पुस्तक ले आओ।' 'लाल (या काली) जिल्दवाली पुस्तक ले आओ।' 'अँगरेजी (या हिन्दी) की पुस्तक ले आओ।' तभी आप माँगी हुई पुस्तक ला सकेंगे।

चौकी पर कलम भी एक ही थी और दवात भी एक ही: इसलिए आपके मन में कोई प्रश्न नहीं हुआ। पर पुस्तकें कई थीं, इसलिए आपके मन में प्रश्न हुआ। इन बातों से सिद्ध होता है कि कुछ अवस्थाओं में तो सञ्ज्ञाओं से काम चल जाता है; पर कुछ अवस्थाओं में केवल संज्ञाएँ पूरा-पूरा काम नहीं करतीं। संज्ञाओं के साथ कुछ ऐसे शब्द या वाक्यांश लगाने पड़ते हैं, जो उन संज्ञाओं की विशेषता बतलाते हैं। संज्ञाओं की इस प्रकार विशेषता बतलानेवाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं। यदि एक शब्द से विशेषता न प्रकट हो

सकती हो और कई शब्दों का प्रयोग करना पड़ता हो, तो उन सब शब्दों के समूह को 'विशेषण वाक्यांश' कहते हैं। ऊपर के उदाहरण में 'छोटा' या 'बड़ी' आदि शब्द विशेषण और 'लाल (या काली) जिल्दवाली' विशेषण पद या वाक्यांश हैं।

भाषा को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए भी कभी कभी विशेषणों का प्रयोग होता है; पर उनका मुख्य काम है संज्ञाओं का ठीक ठीक, वास्तविक और ऐसा स्वरूप बतलाना, जिसमें सुननेवाले को किसी प्रकार का भ्रम न होने पावे। इसी लिए और शब्दों की तरह विशेषणों का प्रयोग भी बहुत ही सोच-समझकर और उनके अर्थ का ठीक ठीक ध्यान रखते हुए ही करना चाहिए। ऐसे विशेषणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिनसे सुननेवाले भ्रम में पड़ जायँ और हमारा ठीक अभिप्राय ही न समझ सकें।

'अगला' और 'पिछला' बहुत सीधे और बहुत प्रचलित विशेषण हैं। हम नित्य उनका व्यवहार करते हैं। हम कहते हैं—'अगले महीने हमारी परीक्षा होगी।' या 'पिछले सप्ताह मेरे भाई यहाँ आये थे।' ये बातें सुनते ही सुननेवाले समझ लेते हैं कि 'अगले' और 'पिछले' से हमारा क्या अभिप्राय है। फिर भी कुछ अवसरों पर 'अगला' और 'पिछला' से भ्रम हो ही जाता है। जो किसी प्रकार के क्रम में आगे या सामने हो, वह 'अगला' कहलाता है; और जो पीछे हो, वह 'पिछला'। आरम्भ के भाग की चीज 'अगली' और अन्त के भाग की 'पिछली' मानी जाती है। पर चाहे भूल से हो और चाहे किसी और कारण से, कभी कभी 'अगला' का भी वही अर्थ हो जाता है, जो 'पिछला' का होता है। हम प्रायः कहा करते हैं—'अगले जमाने में सब चीजें बहुत सस्ती होती थीं।' ऐसे अवसरों पर 'अगले जमाने' से हमारा अभिप्राय बीते हुए दिनों से होता है। फिर हम यह भी कहते हैं—'अगली पीढ़ियाँ हमारी ये बातें नहीं मानेंगी।' यहाँ

'अगली' का अर्थ होता है–आनेवाली (पीढ़ियाँ)। एक ही शब्द बीते हुए समय का भी सूचक हो गया और आनेवाले समय का भी। ऊपर के उदाहरणों में तो प्रसंग से भी और वाक्यों में आई हुई क्रियाओं के रूप से भी अभिप्राय स्पष्ट हो गया। पर कुछ अवसर ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें 'अगला' शब्द से भ्रम हो सकता हो।

'अगला' के तो हमारी भाषा में दो अर्थ प्रचलित हैं, इसलिए उससे भ्रम हो सकता है ; पर 'पिछला' के तो दो अर्थ नहीं हैं। फिर भी कुछ अवसरों पर इस 'पिछला' शब्द से भी भ्रम होता या हो सकता है। यदि हम कहें—'पिछली बातें भूल जाओ।' तो हमारा अभिप्राय समझने में किसी को भ्रम न होगा। पर यदि हम कहें—'मध्य युग और उसके पिछले सौ वर्षों में हमारे यहाँ सब बातों में धर्म की ही प्रधानता थी।' तो 'पिछले सौ वर्षों' से आप क्या अभिप्राय समझेंगे? मध्य युग के अन्त के सौ वर्ष या उस युग के आरम्भ होने से पहले के सौ वर्ष ? हमारा अभिप्राय तभी स्पष्ट होगा, जब हम कहेंगे—'मध्य युग और उसके अन्त के सौ वर्षों में......।' या 'मध्य युग और उसका आरम्भ होने से पहले के सौ वर्षों में......।' इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि यदि विशेषणों का ठीक तरह से और समझ-बूझकर व्यवहार न किया जाय तो उनसे बहुत कुछ भ्रम हो सकता है।

कभी कभी लोग भाषा में सुन्दरता लाने या अपनी बात में कुछ जोर लाने या कुछ शब्दों के प्रयोग के यों ही अभ्यस्त होने के कारण कुछ विशेषणों का प्रयोग कर जाते हैं। हम कह जाते हैं–'यह पुस्तक बहुत सुन्दर है।' 'यह कपड़ा बहुत बढ़िया है।' 'मुझे उनकी मृत्यु से बहुत दुःख हुआ।' 'मुझे बहुत प्यास लगी है।' आदि। इस प्रकार के विशेषण यदि बिलकुल निरर्थक नहीं तो बहुत कुछ निरर्थक अवश्य होते हैं। उनका अर्थ तो होता है, पर कोई विशेष अर्थ नहीं होता।

इसी लिए ऐसे विशेषणों का प्रयोग हम ऐसी बातों में करते हैं, जिनका विशेष महत्त्व नहीं होता; अथवा ऐसे अवसरों पर करते हैं, जब हम किसी बात को बहुत ही साधारण समझकर उसे विशेष रूप से विचार करने के योग्य नहीं समझते। अर्थात् केवल चलती हुई बातों के लिए या काम चलता करने के लिए हम इस प्रकार के साधारण और प्रायः निरर्थक-से विशेषणों का प्रयोग करते हैं। पर विशेष महत्व की बातों के लिए और अधिक महत्व के अवसरों पर हमें बहुत समझ-बूझकर ऐसे चुने हुए विशेषणों का व्यवहार करना चाहिए, जिनसे हमारा अभिप्राय स्पष्ट हो जाय और सुननेवालों को भ्रम न हो।

पर कभी-कभी ऐसे साधारण शब्दों के रहने या न रहने से भी वाक्य के अर्थ और भाव में बहुत अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिए 'अधिक' शब्द ही लीजिए। इसका प्रयोग करते समय लोग प्रायः विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते। पर कुछ अवस्थाओं में इसके कारण भी वाक्य में बहुत महत्त्व का अन्तर हो जाता है। मान लीजिए, हम कहते हैं—'शब्दों के ये रूप अच्छे माने जाते हैं।' इसका आशय यह है कि शब्दों के जिन रूपों का हम जिक्र करते हैं, वे तो अच्छे माने जाते हैं; पर इनके सिवा जो और रूप हैं, वे अच्छे नहीं माने जाते। पर जब हम कहते हैं—'शब्दों के ये रूप अधिक अच्छे माने जाते हैं।' तब इसका अर्थ यह नहीं होता कि और रूप अच्छे नहीं माने जाते। बल्कि इसका आशय यह हो जाता है कि और रूप भी अच्छे माने जाते हैं, पर 'ये रूप' उनसे अधिक अच्छे माने जाते हैं। यही बात इस प्रकार के दूसरे साधारण विशेषणों के सम्बन्ध में भी हो सकती है।

यदि हम कहें—'यह विषय बहुत गम्भीर है।' या 'आप जो बातें कह रहे हैं, वे बहुत ही गम्भीर हैं।' तो हम 'गम्भीर' शब्द का उसके

ठीक, प्रचलित और सबके माने हुए अर्थ में प्रयोग करते हैं। पर यदि हम कहें—'रोगी की अवस्था गम्भीर है।' या 'आटे का भाव गम्भीर रूप धारण कर रहा है।' तो यही सूचित होगा कि हम अपने यहाँ के 'गम्भीर' शब्द का ठीक अर्थ और प्रयोग नहीं जानते: और केवल सुन-सुनाकर, बिना समझे हुए, दूसरों की देखा-देखी या अँगरेजी के अनुकरण पर ही उसका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार—'वह सुन्दर शोभा धारण कर रहा था।' में 'सुन्दर' का प्रयोग बिलकुल व्यर्थ है। 'शोभा' सदा सुन्दर क्या, बहुत सुन्दर होती है। उसके साथ 'सुन्दर' विशेषण लगाकर मानो हम उसका महत्त्व कुछ घटाते ही हैं। ऐसे प्रयोग हमारे अज्ञान के सूचक होते हैं। इनसे हमें बचना चाहिए।

हम 'टेढ़ा' का भी प्रयोग करते हैं, 'तिरछा' का भी और दोनों को मिलाकर 'टेढ़ा-तिरछा' का भी। इससे हम समझ लेते हैं कि 'टेढ़ा' का भी बहुत-कुछ वही अर्थ है, जो 'तिरछा' का है। इन दोनों के अर्थों में जो सूक्ष्म अन्तर या भेद है, उसपर जल्दी हमारा ध्यान ही नहीं जाता। पर 'टेढ़ी निगाह' और 'तिरछी निगाह' में दोनों के अर्थों के भेद स्पष्ट हो जाते हैं। 'टेढ़ी निगाह' क्रोध आदि के कारण होती है; और 'तिरछी निगाह' प्रेम के कारण भी होती है, दूसरों की निगाह बचाने के लिए भी होती है और इसी तरह के कुछ दूसरे अवसरों पर भी होती है।

विशेषणों का प्रयोग करते समय उनके अर्थों का तो ध्यान रखना ही पड़ता है, उनके स्थान का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि अर्थ के विचार से तो विशेषण ठीक हो, पर वाक्य में अपने ठीक स्थान पर न हो, तो वह वाक्य का अर्थ गड़बड़ा देता है। 'बड़ी गाड़ी की खिड़कियाँ' और ; 'गाड़ी की बड़ी खिड़कियाँ' में बहुत अन्तर है। यही बात 'विदेशी सिलाई के तागे' और 'सिलाई के

विदेशी तागे', 'पहले सप्ताह के खेल' और 'सप्ताह के पहले खेल' या 'नई दुनिया की कहानियाँ' और 'दुनिया की नई कहानियाँ' के सम्बन्ध में भी है। 'मनुष्यों और पशुओं की अनगिनत जानें गईं।' कहने से 'अनगिनत मनुष्यों और पशुओं की जानें गईं।' कहना अधिक अच्छा भी है और अधिक शुद्ध भी। इसलिए विशेषण सदा वहीं रखना चाहिए, जहाँ उसकी आवश्यकता हो और जहाँ वह अपना ठीक अर्थ दे सके।

कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें विशेषण का स्थान बदलने पर भी अर्थ में विशेष अन्तर नहीं आता। जैसे—'मैं पुत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन करता हूँ।' और 'मैं उनकी आज्ञा का पालन पुत्रवत् करता हूँ।' हो सकता है कि सूक्ष्म विचार करने पर इन दोनों के अर्थों में भी कुछ अन्तर निकल आवे, पर वह कोई बहुत बड़ा अन्तर न होगा। पर यदि कहा जाय—'राजा पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था।' तो इससे आप क्या अभिप्राय समझेंगे? राजा अपनी प्रजा का पालन उसी तरह करता था, जिस तरह लोग अपने पुत्र का पालन करते हैं; या राजा अपनी प्रजा का उसी तरह पालन करता था, जिस तरह पुत्र अपनी प्रजा का पालन करता है?. वाक्य की बनावट से अन्तिम अर्थ ही ठीक जान पड़ता है। पर यह अर्थ वास्तविकता से बहुत दूर है। ठीक और संगत अर्थ वही है, जो पहले दिया गया है; पर वह अर्थ वाक्य की बनावट से सिद्ध नहीं होता। फिर भी बहुत से लोग इसी तरह लिखते हुए देखे जाते हैं। पर अधिक विचारपूर्वक लिखनेवाले लोग लिखेंगे—'राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था।' या 'राजा अपनी प्रजा का पालन उसी प्रकार करता था, जिस प्रकार पुत्र का पालन किया जाता है।' इस रूप में वाक्य का विस्तार तो कुछ अधिक हो गया है, पर अर्थ में किसी प्रकार के भ्रम के लिए स्थान नहीं है। इसलिए सिद्धान्त यह नि-

कलता है कि वाक्य भले ही कुछ लम्बा हो जाय, पर अर्थ के विचार से वह बिलकुल ठीक होना चाहिए।

विशेषणों का प्रयोग करते समय लोग एक और प्रकार से अर्थ का ध्यान छोड़ देते हैं। जैसे—'यह पुस्तक बड़ी अच्छी है।' या 'वे बड़े अच्छे आदमी हैं।' इन वाक्यों में आये हुए 'बड़ी' और 'बड़े' शब्द विशेषण हैं और वाक्यों में उनका अशुद्ध प्रयोग हुआ है। होना चाहिए—'यह पुस्तक बहुत अच्छी है।' और 'वे बहुत अच्छे आदमी हैं। एक और प्रकार से लोग 'बड़ा' का अशुद्ध प्रयोग करते हैं। जैसे—'उनका लड़का उनसे बड़ा है।' इस वाक्य में 'बड़ा' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। यह पता नहीं चलता कि वह लम्बाई में बड़ा है या अवस्था में। यह ठीक है कि लड़का कभी बापसे अवस्था में बड़ा नहीं हो सकता। फिर भी वाक्य का ऐसा ही अर्थ हो सकता है। इसलिए ऐसे स्थानों पर 'बड़ा' की जगह 'लम्बा' होना चाहिए। 'यह बड़ी छोटी बात है।' कहना दो कारणों से ठीक नहीं है। एक तो इसमें 'बड़ी' (विशेषण) का प्रयोग अशुद्ध है और उसकी जगह 'बहुत' क्रिया-विशेषण होना चाहिए। और दूसरे 'बड़ी' और 'छोटी' का एक साथ प्रयोग बहुत भद्दा और खटकनेवाला है।

'बड़ा' और 'बहुत' में बहुत अन्तर है; और इनका प्रयोग बहुत समझ-बूझकर करना चाहिए। कुछ स्थानों में केवल 'बड़ा' का प्रयोग होता है; और कुछ में केवल 'बहुत' का। पर कुछ स्थान ऐसे भी होते हैं, जिनमें 'बहुत' और 'बड़ा' दोनों का प्रयोग हो सकता है, पर दोनों के अर्थ में अन्तर होता है। जैसे 'बहुत काम' और 'बड़ा काम।' यहाँ 'बहुत' का अर्थ है—दो-चार, दस-बीस या सौ-पचास आदि। और इसी लिए इसके अन्त में क्रिया भी बहुवचन होती है। जैसे—'आज-कल मेरे पास बहुत काम हैं।' यहाँ 'बहुत' का अर्थ है—बहुत-से या बहुतेरे। पर 'बड़ा काम' का अर्थ है,—ऐसा काम

जिसे पूरा करने में अधिक समय और परिश्रम की आवश्यकता हो या जिसे सब लोग सहज में न कर सकते हों। जैसे—'आज-कल आपने एक बड़ा काम हाथ में ले रक्खा है।' इस 'बड़ा' के पहले हम 'बहुत' भी लगा सकते हैं और कह सकते हैं—'आज-कल आपने एक बहुत बड़ा काम हाथ में रक्खा है।' इस वाक्य में 'बहुत' लगने से काम का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की सबसे बड़ी बात यह है कि 'बहुत' विशेषण भी है और क्रिया-विशेषण भी। हम यह भी कहते हैं—'इस काम में बहुत रुपये लग गये।' और यह भी कहते हैं—'यह मकान बहुत अच्छा है।' पर 'बड़ा' विशेषण ही है; और इसलिए उसका प्रयोग केवल संज्ञाओं से पहले होना चाहिए; विशेषण, क्रिया या क्रिया-विशेषण के पहले नहीं होना चाहिए।

और भी कई ऐसे विशेषण हैं, जिनका प्रयोग लोग प्रायः बिना समझे-बूझे और अशुद्ध रूप में कर जाते हैं। जैसे—'मुझे उस समय भारी प्यास लगी।' और 'आपके व्यवहार से मुझे भारी दुःख हुआ।' इन वाक्यों में 'भारी' का प्रयोग अशुद्ध है। इसकी जगह 'बहुत' होना चाहिए। 'उनका धैर्य समाप्त हो गया।' में 'समाप्त' शब्द ठीक नहीं है। 'समाप्त' तो वह चीज होती है जो अधिक मात्रा में इकट्ठी हो और धीरे धीरे खर्च होती हुई अन्त में बिलकुल न रह जाती हो। पुस्तक तो 'समाप्त' हो सकती है और धन भी 'समाप्त' हो सकता है; पर बुद्धि या घर 'समाप्त' नहीं होता। हाँ, जब 'घर' शब्द से हम घर में रहनेवाले सब लोगों का अर्थ लेते हैं, तब अवश्य कहते हैं—'हैजे में सारा घर समाप्त हो गया।' या 'घर का घर समाप्त हो गया।' पर यदि बरसात में किसी का घर बैठ जाय तो यह नहीं कहते—'आज उनका घर समाप्त हो गया।'

कुछ लोग विशेषणों के रूप बनाने में भी कई प्रकार की भूलें

करते हैं। प्रायः लोग हिन्दी के तद्भव शब्दों से उसी प्रकार विशेषण बना लेते हैं, जिस प्रकार संस्कृत के तत्सम शब्दों से बनते हैं। यदि संस्कृत के 'पुष्प' से हम 'पुष्पित' या 'लेखन' से 'लिखित' बनावें तो ठीक ही है। पर यदि हम हिन्दी के 'सुधार' से 'सुधारित' 'जड़ना' से 'जड़ित' (जैसे—रत्न-जड़ित) और 'अचम्भा' से 'अचम्भित' बनाने लगें तो लोग हमारी हँसी उड़ावेंगे। इसलिए केवल देखा-देखी ऐसे रूपों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अच्छी तरह सोच-समझकर या बड़ों से पूछकर ही उनका प्रयोग करना चाहिए।

प्रायः लोग संस्कृत के विशेषणों के प्रयोग में भी कई प्रकार की भूलें कर जाते हैं। संस्कृत में शुद्ध रूप 'निर्दय' और 'निरपराध' हैं; पर प्रायः लोग 'निर्दयी' और 'निरपराधी' लिख जाते हैं। संस्कृत का शुद्ध रूप 'क्रुद्ध' है; पर लोग लिख जाते हैं—क्रोधित। बहुत से लोग 'व्याप्त' को 'व्यापित' और 'ग्रस्त' को 'ग्रसित' भी लिख जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। हम जो कुछ लिखें, उसके सम्बन्ध में हमें पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वह शुद्ध है या नहीं। और जो कुछ निश्चित रूप से हमें शुद्ध मालूम हो, वही लिखना चाहिए।

कभी कभी लोग ऐसे अवसरों पर संज्ञाओं का प्रयोग कर जाते हैं, जहाँ वास्तव में विशेषण का प्रयोग होना चाहिए। जैसे—'सब प्रकार के रोग इस दवा से नाश हो जाते हैं।' कहना अशुद्ध है। इसमें 'नाश' की जगह 'नष्ट' होना चाहिए। या यदि हम 'नाश' का ही प्रयोग करना चाहें तो हमें कहना होगा—'इस दवा से सब प्रकार के रोगों का नाश हो जाता है।' 'मेरे भाई ने अपनी लिखी यह पुस्तक आपको समर्पण की है।' में 'समर्पण' की जगह 'समर्पित' होना चाहिए। इसी प्रकार 'इस विषय में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।' में 'निश्चय'

की जगह 'निश्चित' और 'यह पुस्तक उनको प्रदान हुई है।' में 'प्रदान' की जगह 'प्रदत्त' होना चाहिए।

विशेषणों के आगे-पीछे शब्द या उपसर्ग और प्रत्यय आदि भी बहुत समझ-बूझकर लगाने चाहिएँ। यह कहना ठीक नहीं है—'तुम सबसे सुन्दरतम हो।' 'सुन्दरतम' का अर्थ ही है—सबसे अधिक सुन्दर। इसलिए या तो कहना चाहिए—'तुम सबसे सुन्दर हो।' या 'तुम सुन्दरतम हो।' इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—'दोनों में यह उत्तमतर है।' क्योंकि 'उत्तम' का अर्थ ही सबसे अच्छा। और जो सबसे अच्छा है, उसे फिर किसी की तुलना में 'उत्तमतर' कहना ठीक नहीं है। इसलिए कहना चाहिए—'इन दोनों में वह उत्तम है।'

११

क्रियाएँ

जिस प्रकार संज्ञा का अर्थ नाम है, उसी प्रकार क्रिया का अर्थ काम है। हमारे सामने बहुत सी चीजें होती हैं; और उन सब चीजों के अलग अलग नाम होते हैं। इसी प्रकार हमारे सामने बहुत से काम भी होते हैं; और उन सब कामों के अलग-अलग नाम होते हैं। खाना, पीना, पढ़ना, लिखना, उठना, बैठना, सोना, दौड़ना, घूमना, खेलना, बोलना, माँगना, देना, मिलना, लड़ना आदि सब काम ही हैं; और उन सब कामों के यही नाम हैं। हम जो काम करते हैं, उनके नाम ही व्याकरण में 'क्रिया' कहलाते हैं।

ऊपर हमने कामों के जो नाम दिये हैं, उन सब में एक बात समान रूप से दिखाई देती है। वह यह कि सबके अन्त में 'ना' लगा है। इसी लिए प्रायः व्याकरणों में यह बतलाया जाता है कि यह 'ना' प्रत्यय है, जो खा, पी, पढ़, लिख, उठ, बैठ, सो, दौड़ आदि धातुओं में लगा दिया गया है; और इस प्रकार उन धातुओं से ये क्रियाएँ बना ली गई हैं। कुछ लोग इससे भी और आगे बढ़कर यह कहते हैं कि स्वयं खाना, पीना, पढ़ना, लिखना, बोलना, देना आदि रूप ही धातु हैं; और बतलाते हैं कि इन्हीं रूपों में विकार होने से क्रियाएँ बनती हैं। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये

बातें कुछ ठीक नहीं जान पड़तीं। संस्कृत में तो अवश्य धातुएँ हैं (या बना ली गई हैं !); और उन्हीं धातुओं में उपसर्ग और प्रत्यय आदि लगने से संस्कृत के सब शब्द बने हैं। पर हमारी हिन्दी में धातुओंवाला तत्त्व है ही नहीं। हाँ, हमारी भाषा संस्कृत से, कई रूप बदलने के बाद, बनी है; इसी लिए संस्कृत भाषा के बहुत से तत्त्व हमारी भाषा में आपसे आप आ गये हैं। बस इतना ही; इससे अधिक और कुछ नहीं।

असल बात यह है कि संस्कृत में बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनके अन्त में 'न' है; और कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनके अन्त में, संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार, 'न' के बदले 'ण' है। प्रायः वे सब शब्द, व्याकरण के विचार से, भाववाचक संज्ञाओं के अन्तर्गत आते हैं। जैसे—कर्त्तन, वर्त्तन, पठन, लेखन, पालन, मिलन, शयन, भाषण, घर्षण और वर्षण आदि। हमारी सम्मति में हमारे यहाँ की सब क्रियाएँ सीधी इन्हीं भाववाचक संज्ञाओं से बनी हैं। उनमें से कुछ तो ज्यों की त्यों रह गई हैं और कुछ के रूप, बीच में होनेवाले परिवर्त्तनों के कारण, कुछ बदल गये हैं। हमने कर्त्तन से कतरना, वर्त्तन से बरतना, पठन से पढ़ना, लेखन से लिखना, पालन से पालना, मिलन से मिलना, शयन से सोना, भाषण से भाखना (पुरानी हिन्दी), घर्षण से घिसना और वर्षण से बरसना आदि क्रियाएँ बना ली हैं। न तो हमारे यहाँ धातु के झगड़े आये हैं, न हम उनके फेर में पड़े हैं। हमें बने-बनाये भाववाचक शब्द मिले हैं; और उन्हीं से हमने क्रियाएँ बनाई हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ की बहुत सी क्रियाएँ भाववाचक संज्ञाओं के रूप में भी चलती हैं। जैसे—'दिन-रात खेलना अच्छा नहीं।', 'उस समय तुम्हारा बोलना बुरा हुआ।', 'उन्हें नाचना नहीं आता।' और 'तुम्हारा हमसे मिलना उन्हें अच्छा नहीं लगता।' इनमें 'खेलना', 'बोलना', 'नाचना' और 'मिलना' शब्द

क्रियाओं के साधारण रूप में होने पर भी संज्ञाओं के रूप में आये हैं और इसी लिए कुछ लोग ऐसे रूपों को क्रियार्थक संज्ञा भी कहते हैं। पर हैं ये भाववाचक संज्ञाओं के अन्तर्गत ही।

हम ऊपर कह आये हैं कि 'ना' हमारे यहाँ प्रत्यय के रूप में नहीं था, बल्कि वह संस्कृत की कुछ क्रियार्थक अथवा भाववाचक संज्ञाओं से सीधा आया था। परन्तु आगे चलकर कुछ ऐसी बातें हो गईं, जिनसे उसने बहुत कुछ प्रत्यय का रूप धारण कर लिया। धीरे धीरे लोग अपने सुभीते के विचार से और काम चलाने के लिए कुछ विशेषणों और संज्ञाओं से भी क्रियाएँ बनाने लगे। जैसे—छेद से छेदना, और धिक्कार से धिक्कारना आदि। जब प्राचीन हिन्दी कविता का विशेष प्रचार होने लगा, तब कवियों ने छन्दों के विचार से इसी प्रकार की और भी बहुत-सी क्रियाएँ बनाईं। जैसे—उद्धार से उद्धारना और अनुराग से अनुरागना आदि। फिर जब मुसलमान इस देश में आये, तब उनके प्रभाव से हमारी भाषा का रूप भी कुछ कुछ बदलने लगा। अरबी का तो संस्कृत के साथ कोई मेल नहीं था; पर फारसी और संस्कृत की बहुत सी बातें आपस में मिलती-जुलती थीं। यहाँ तक कि दोनों के सैकड़ों-हजारों शब्द भी बहुत कुछ ज्यों के त्यों थे। संस्कृत में घोड़े को 'अश्व' कहते हैं, फारसी में 'अस्प'; संस्कृत में जिसे 'गौ' कहते हैं, फारसी में वह 'गाव' है। नाम, दाम आदि कुछ शब्द तो फारसी और संस्कृत में एक से हैं ही। इसका कारण यह है कि फारसी भी मूलतः हमारी संस्कृत से ही निकली हुई और एक शाखा के रूप में दूसरे देश में, जो पहले किसी समय हमारा ही था, फैली हुई भाषा है। इसी लिए जिस प्रकार हमारे यहाँ पालन, मिलन और पटन आदि सैकड़ों हजारों नकारान्त शब्द हैं, उसी प्रकार फारसी में भी हैं। जैसे खुर्दन (खाना) नोशीदन (पीना), नविश्तन (लिखना), गुजाश्तन (छोड़ना), गुजरा-

नीदन (बिताना), कशीदन (खींचना), फरमूदन (आज्ञा देना), आ-मोख्तन (पढ़ना) आदि आदि। और फारसी में भी ये सब हमारी यहाँ की ऐसी संज्ञाओं की तरह क्रियार्थक या भाववाचक संज्ञाएँ ही हैं।

जब मुसलमान लोग इस देश में बस गये, तब बहुत सी बातों में हमारा-उनका लेन-देन होने लगा। भाषा का क्षेत्र भी इस लेन-देन से अछूता न बचा। उन्होंने हमारी भाषा को एक नये साँचे में ढालना आरम्भ किया। क्रियार्थक संज्ञाओं के अन्तवाला 'न' तो संस्कृत और फारसी दोनों में समान था ही, और हिन्दी क्रियाओं में उसने 'ना' का रूप धारण कर ही रक्खा था; इसलिए इस 'ना' को प्रत्यय का रूप मिल गया। उन्होंने अपने यहाँ के 'फरमूदन' शब्द से फरमाना, 'गुजरानीदन' से गुजारना आदि कुछ शब्द बनाये। फिर इसी प्रकार 'शर्म' से शरमाना, 'खरीद' से खरीदना, 'खर्च' से खरचना, 'बदल' से बदलना, 'दाग' से दागना, और 'वसूल' से वसूलना आदि और बहुत सी क्रियाएँ उसी प्रकार बन गईं, जिस प्रकार हमारे यहाँ भी 'हाथ' से हथियाना और 'अपना' से अपनाना आदि क्रियाएँ बनी थीं। और इन्हीं सब क्रियाओं के आधार पर, जो हमारे यहाँ की क्रियाओं और भाषा में बिलकुल मिल-जुल गई थीं, 'ना' प्रत्यय बन गया।

इस पुस्तक के विवेचन का यह विषय नहीं है कि 'ना' प्रत्यय है या नहीं; अथवा वह कैसे और कब बना। यह तो क्रियाओं के रूप के प्रसंग में एक बात आ गई थी, जो विद्यार्थियों के हित के विचार से यहाँ बतला दी गई। हमारा मुख्य विषय तो यह बतलाना है कि भाषा में क्रियाएँ क्या और किस प्रकार काम करती हैं; और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भूलों से किस प्रकार बचना चाहिए। इसलिए अब हम यह विषय छोड़कर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

मान लीजिए कि मैं कुछ देर से आपके पास बैठा हुआ बातें कर रहा हूँ। अब मैं उठकर जाना चाहता हूँ। मैं आपसे कहता हूँ—'मैं जाता हूँ।' अथवा आप मुझसे भेंट करने के लिए आते हैं और आपको मेरे आसरे दस-पाँच मिनट बैठना पड़ता है। मैं आकर आपसे क्षमा माँगता हूँ और कहता हूँ—'मैं सोता था।' अब 'मैं जाता हूँ।' और 'मैं सोता था।' दोनों इस दृष्टि से पूरे वाक्य हैं कि इनसे आप मेरी बात पूरी तरह से समझ लेते हैं। आपको और कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

'मैं जाता हूँ।' या 'मैं सोता था।' कहने से तो आपने पूरी बात समझ ली—आपका पूरा सन्तोष हो गया। पर यदि आप मेरे घर पहुँचकर मुझे पुकारें और मैं ऊपर से उत्तर दूँ—'मैं खाता हूँ।' तो भी आप मेरी पूरी बात समझ लेंगे, पर आपके मन में एक जिज्ञासा हो सकती है। आप अपने मन में सोच सकते हैं—यह क्या खाता है? दाल-रोटी खाता है, चने खाता है, रेवड़ियाँ खाता है? या कहीं मार ही तो नहीं खाता! अथवा, आपके पास पहुचकर मैं आपसे कहूँ—'मैं पढ़ता था।' तो भी आपके मन में जिज्ञासा होगी कि यह क्या पढ़ता था? हिन्दी पढ़ता था, अँगरेजी पढ़ता था, पुस्तक पढ़ता था, समाचार-पत्र पढ़ता था, अथवा और कुछ पढ़ता था? यदि मैं कहूँ—'मैं लिखता था।' तो भी आपके मन में अनेक प्रश्न होंगे। यह किसी को पत्र लिखता था, कोई लेख लिखता था, या बही-खाता लिखता था? आदि।

आगे बढ़ने से पहले यहाँ एक और बात बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। वह यह है कि 'मैं जाता हूँ।' 'मैं खाता हूँ।' 'मैं सोता था।' और 'मैं पढ़ता था।' से आपको पूरी या अधूरी बात तो मालूम हो ही जाती है; इनमें के 'हूँ' और 'था' से आपको काल का भी निश्चित ज्ञान हो जाता है। 'हूँ' कहने से आप समझ लेते हैं कि यह

बात वर्तमान काल की है और 'था' कहने से समझ लेते हैं कि यह बात बीते हुए समय या भूत काल का है। और यदि मैं कहूँ—'मैं जाऊँगा (या सोऊँगा)।' तो क्रिया के इस रूप से ही आप यह भी समझ लेंगे कि यह बात भविष्यत् काल से सम्बन्ध रखती है। अर्थात् वाक्यों में क्रियाओं के रूप ही काल के सूचक भी होते हैं।

अब यहाँ दो प्रकार के वाक्य आपके सामने हैं। पहले प्रकार में तो 'मैं जाता हूँ।' और 'मैं सोता था।' और दूसरे प्रकार में 'मैं खाता था।' 'मैं पढ़ता था।' और 'मैं लिखता था।' हैं। एक प्रकार के वाक्य सुनते ही आपका समाधान हो जाता है और आपको कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती। पर दूसरे प्रकार के वाक्यों से आपका समाधान नहीं होता—आपके मन में कुछ जिज्ञासा रह जाती है। यहीं से क्रियाओं के वे दो भेद होते हैं, जिन्हें व्याकरण में 'अकर्मक' और 'सकर्मक' कहते हैं। अकर्मक क्रियाएँ तो स्वयं पूरी होती हैं और किसी स्पष्टीकरण या व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखतीं; पर सकर्मक क्रियाएँ तब तक पूरी नहीं होतीं, जब तक उनमें वह तत्त्व न हो, जिसे व्याकरण में 'कर्म' कहते हैं और जिसके न होने या होने से क्रियाएँ अकर्मक या सकर्मक होती हैं। अकर्मक और सकर्मक की पहचान के लिए अगरेजी व्याकरणों में बतलाया हुआ एक बहुत सीधा और सुगम उपाय यह है कि जिस क्रिया के सम्बन्ध में प्रश्न हो सके—क्या? (क्यों, कैसे, कहाँ आदि नहीं) और साथ ही उस 'क्या?' का कुछ उत्तर भी हो सके, वही सकर्मक क्रिया है। यदि क्रिया के सम्बन्ध में यह 'क्या?' वाला प्रश्न या इसका कोई उत्तर न हो सके, तो वह अकर्मक होगी।

अकर्मक और सकर्मक का यह विवेचन तो हुआ, पर दो बातें और ऐसी हैं, जिन्हें स्पष्ट किये बिना यह अधूरा ही रह जायगा। जिस परिस्थिति में हमने ऊपर 'मैं जाता हूँ।' वाला उदाहरण दिया

है, उस परिस्थिति के सिवा कुछ और ऐसी परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं, जिनमें 'मैं जाता हूँ।' वाक्य भी अधूरा हो सकता है; और इसके सम्बन्ध में भी आपके मन में जानने की कोई बात रह सकती है। मान लीजिए कि आप कहीं बाहर से आ रहे हैं और मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ। स्टेशन पर हम लोगों की भेंट हो जाती है। उस समय यदि मैं आपके पूछने पर केवल इतना कह दूँ—'मैं जाता हूँ।' तो आपके मन में अवश्य यह जानने की इच्छा होगी कि यह कहाँ जाता है। उस समय मुझे कहना पड़ेगा—'मैं प्रयाग (कलकत्ते या लाहौर) जाता हूँ।' 'जाना' है तो अकर्मक क्रिया, फिर भी ऐसे अवसरों पर उसके साथ किसी स्थान के नाम की आवश्यकता रह ही जाती है। व्याकरण के नियम के अनुसार स्थान का वह नाम 'कर्म' तो हो नहीं सकता; इसलिए ऐसे अवसरों पर आनेवाली कुछ क्रियाएँ अकर्मक तो रहती हैं, पर अपूर्ण अकर्मक कहलाती हैं; और जिन संज्ञाओं अथवा विशेषणों से उनकी पूर्त्ति होती है, उन्हें 'पूर्ति' कहते हैं। 'मैं प्रयाग जाता हूँ।' में 'प्रयाग' पूर्त्ति है; और 'वे विद्वान् हैं।' में 'विद्वान्' पूर्त्ति है। सकर्मक क्रियाओं-वाले वाक्यों में इस प्रकार की पूर्त्ति उनमें आये हुए कर्म से ही हो जाती है; पर उनमें ऐसी संज्ञाओं और विशेषणों को पूर्त्ति नहीं कहते, बल्कि 'पूरक' कहते हैं।

इस के सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य दूसरी मुख्य बात यह है कि कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं, जो कभी अकर्मक होती हैं और कभी सकर्मक। 'मैं आपसे कल मिलूँगा।' में 'मिलना' अकर्मक है और 'मुझे आपका पत्र मिला।' में 'मिलना' सकर्मक। 'मेरा हाथ खुजला रहा है।' में 'खुजलाना' अकर्मक क्रिया के रूप में आया है; और 'मैं अपना हाथ खुजला रहा हूँ।' में वही 'खजलाना' सकर्मक क्रिया के रूप में आया है। इसी प्रकार 'मैं भूलता हूँ, आप कल नहीं परसों

आये थे।' में 'भूलना' अकर्मक है; और 'मैं पुस्तक घर भूल आया हूँ।' में 'भूलना' सकर्मक है। इसी प्रसंग में यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि कभी कभी कुछ अकर्मक क्रियाओं से भी सकर्मक क्रियाएँ बनती हैं। जैसे 'मैं चलता हूँ।' में 'चलना' अकर्मक क्रिया है; और 'मैं गाड़ी चलाता हूँ।' में 'चलाना' सकर्मक क्रिया है, जो अकर्मक क्रिया 'चलना' से बनाई गई है। पर इन सब बातों का यह अर्थ नहीं है कि हम जब चाहें, तब किसी अकर्मक क्रिया से सकर्मक क्रिया और किसी सकर्मक क्रिया से अकर्मक क्रिया बना लें। बात यह है कि कुछ क्रियाएँ सदा अकर्मक होती हैं (जैसे, जाना) और कुछ सदा सकर्मक (जैसे, माँगना)। कुछ क्रियाएँ एक ही रूप में अकर्मक और सकर्मक दोनों होती हैं (जैसे, मिलना)। और कुछ क्रियाएँ अकर्मक होने पर कुछ और रूप की होती हैं और सकर्मक होने पर कुछ और रूप की (जैसे, टूटना और तोड़ना या फूटना और फोड़ना आदि)। इसके सिवा प्रायः सकर्मक क्रियाओं से प्रेरणार्थक रूप भी बनते हैं। जैसे—ढूँढ़ना से ढुँढ़वाना और पढ़ना या पढ़ाना से पढ़वाना आदि। पर अकर्मक क्रियाओं के प्रेरणार्थक रूप नहीं होते। हमें निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि कौन सी क्रियाएँ सदा अकर्मक रहती हैं और कौन सी सदा सकर्मक; कौन सी क्रियाएँ अकर्मक और सकर्मक दोनों होती हैं; और किन अकर्मक क्रियाओं या संज्ञाओं आदि से किस प्रकार सकर्मक क्रियाएँ बनती हैं। यदि ये सब बातें जाने बिना हम लिखने लगेंगे—'उनके मुँह से सदा शुद्ध किताब ही बुलती है।' या 'यदि तुम यहाँ से नहीं जाओगे, तो मैं तुम्हें जवाऊँगा।' या 'वह वहाँ से हँसती-खुशती चली।' तो लोग हमारी हँसी ही उड़ावेंगे।

क्रियाओं के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक और बात यह है कि उनका उपयोग बहुत समझ-बूझकर किया जाना चाहिए। 'करना'

और 'होना' ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनका उपयोग बहुत अधिक अवसरों पर होता या हो सकता है। कुछ ही ऐसे शब्द हैं, जिनके साथ इनका उपयोग नहीं होता, कुछ दूसरी क्रियाएँ लगती हैं। पर कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो ऊपर से देखने पर तो बहुत-कुछ एक सा अर्थ प्रकट करनेवाली जान पड़ती हैं, पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उनके अर्थों में बहुत कुछ अन्तर होता है। उदाहरण के लिए 'टूटना' और 'फूटना' या 'तोड़ना' और 'फोड़ना' लीजिए। हम कहते हैं—'उसका हाथ टूट गया।' और 'उसकी आँखें फूट गईं।' हम यह नहीं कह सकते—'उसका हाथ फूट गया।' और 'उसकी आँखें टूट गईं।' क्यों? इसी लिए कि 'टूटना' और बात है, 'फूटना' और बात। दूसरा उदाहरण लीजिए—खींचना और तानना। हम कहते हैं—'तम्बू ताना गया और कनात खींची गई।' इस वाक्य में 'खींचना' की जगह 'तानना' और 'तानना' की जगह 'खींचना' रखने से काम नहीं चल सकता। यही बात 'लड़का दौड़ा हुआ घर गया।' और 'लड़का मारे डर के भाग गया।' के सम्बन्ध में भी है। इसी लिए 'भागकर घर से पुस्तक ले आओ।' सरीखे वाक्य अशुद्ध होते हैं। दूध 'उबाला' जाता है; और खीर 'पकाई' जाती है। कोई यह नहीं कहता—'मैं दूध पकाता हूँ और खीर उबालता हूँ।' कारण यही है कि दोनों क्रियाओं के कार्य अलग अलग प्रकार के हैं। हम दुकानदार से कहते हैं—'यह धोती कटी है; दूसरी दो।' और धोबी से कहते हैं—'तुम नया कुरता फाड़ लाये।' यहाँ 'कटना' और 'फटना' (या फाड़ना) का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। हम किसी को थप्पड़ 'मारते' हैं और छड़ियों से 'पीटते' हैं। लकड़ी आग में 'जलती' है और आग की लपट से मुँह 'झुलसता' है। हम दीवार में कील 'ठोकते' हैं और अँगूठी में नगीना 'जड़ते' हैं। इसी प्रकार के अन्तर 'घुमाना' और 'मोड़ना', 'चखना' और 'खाना', 'उठना' और 'उभर-

ना' तथा 'गिरना' और 'पड़ना' आदि में हैं। यदि थोड़ा ध्यान दिया जाय, तो ये अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं। और जब इस प्रकार के अन्तर का ध्यान रखकर क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, तभी भाषा ठीक और मुहावरेदार होती है।

अब हम कुछ उदाहरण देकर अपनी बात और स्पष्ट करना चाहते हैं। साधारणतः 'त्यागना' या 'त्याग देना' का भी वही अर्थ है, जो 'छोड़ना' या 'छोड़ देना' का है। फिर भी हम यह तो कह सकते हैं—'पुलिस ने चोर को छोड़ दिया।' पर यह नहीं कह सकते—'चोर को त्याग दिया।' इसी लिए कि 'छोड़ना' कुछ और प्रकार की क्रिया है, 'त्यागना' कुछ और प्रकार की। इसी प्रकार 'दुखियों का भय हटानेवाले राजा तुझे बचावेंगे।' में 'हटाने' का प्रयोग ठीक नहीं है। यहाँ 'हटानेवाले' की जगह 'दूर करनेवाले' होना चाहिए। 'राजा ने धनुष खींच लिया।' भी इसी प्रकार का भद्दा और अशुद्ध वाक्य है। धनुष 'खींचा' नहीं बल्कि 'उठाया' या 'चढ़ाया' जाता है। और 'अध्यापकों ने हड़ताल मनाई।' में तो 'मनाई' का कुछ अर्थ ही नहा है। मनाया तो त्योहार जाता है या खुशी या छुट्टी मनाई जाती है; हड़ताल तो केवल की जाती है या होती है।

कुछ इसी प्रकार की भूल उस समय भी होती है, जब वाक्य में संज्ञाएँ तो कई अथवा कई प्रकार की होती हैं और उनके अन्त में क्रिया एक ही रक्खी जाती है। 'वह सीना-पिरोना, संगीत, कसीदा और हिन्दी पढ़ी है।' में की अन्तिम 'पढ़ी है' क्रिया की संगति 'हिन्दी' के साथ तो बैठती है, पर 'सीना-पिरोना, संगीत और कसीदा' के साथ नहीं बैठती। यदि हम कहें—'वह सीना-पिरोना, संगीत, कसीदा काढ़ना जानती है' तो वाक्य कुछ ठीक हो सकता है, पर उसमें इसलिए खटक रह जाती है कि 'काढ़ना' का

सम्बन्ध 'संगीत' से भी लगाया जा सकता है। इसलिए वाक्य का अच्छा रूप होगा—'वह 'सीना-पिरोना, कसीदा काढ़ना और संगीत जानती है......।' 'दरजी हमारे कपड़े और कुम्हार हमारे खिलौने गढ़ता है।' भी ऐसा ही वाक्य है। इसे ठीक करने के लिए हमें 'कपड़े' के बाद 'सीता' शब्द रखना पड़ेगा; क्योंकि 'खिलौने' तो गढ़े जाते हैं, पर कपड़ 'सीये' (या यदि वाक्य में 'जुलाहा' हो तो 'बुने') जाते हैं।

हमें इस बात का तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि कहाँ किस क्रिया का प्रयोग उचित है; इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि कहाँ अकर्मक क्रिया का प्रयोग होना चाहिए और कहाँ सकर्मक क्रिया का;। पर कभी-कभी हम भूल से एक ही वाक्य के आरम्भ में एक प्रकार की और अन्त में दूसरे प्रकार की क्रिया रख देते हैं, जिससे वाक्य भद्दा और अशुद्ध हो जाता है। जैसे—'वह नागरी लिपि में होना चाहिए और साथ में उसका हिन्दी अनुवाद भी देना चाहिए।' इसके पहले अंश में 'होना' अकर्मक क्रिया और पिछले अंश में 'देना' सकर्मक क्रिया है; इसलिए यह वाक्य ठीक नहीं है। 'वह बदन अकड़कर लेट गया।' में 'अकड़ना' अकर्मक क्रिया इसलिए ठीक नहीं है कि उसके पहले 'बदन' (कर्म) आ चुका है। इस वाक्य में 'अकड़कर' की जगह 'अकड़ाकर' होना चाहिए। 'स्वतन्त्रता लड़कर मिलेगी।' में 'लड़कर' पूर्वकालिक क्रिया ठीक नहीं है। इसका अर्थ तो यह होगा कि स्वतन्त्रता पहले लड़ लेगी, तब मिलेगी। होना चाहिए—'स्वतन्त्रता लड़ने से (या पर) मिलेगी।' यही बात 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़के की मृत्यु हो गई।' के सम्बन्ध में भी है। इसमें 'दबकर' की जगह 'दबने से' होना चाहिए।

यदि अकर्मक और सकर्मक का प्रश्न न भी हो तो भी वाक्य में

आदि से अन्त एक ही रूप की क्रियाएँ होनी चाहिएँ। 'यदि आप ऐसा आदमी भेज देते तो मैं उसे रख लूँगा।' इसलिए ठीक नहीं है कि इसमें 'रख लूँगा' का 'भेज देते' के साथ मेल नहीं बैठता। 'भेज देते' से तो 'रख लेता' का ही मेल बैठता है। यदि इस वाक्य में 'भेज देते' की जगह 'भेज दें' हो तो अन्त में 'रख लूँ' होना चाहिए। और यदि उसकी जगह 'भेज देंगे' हो तो 'रख लूँगा' का मेल बैठेगा। 'जहाँ मैं चूकता हूँ, वहाँ पैर टूटे।' भी इसी प्रकार का वाक्य है। इसमें या तो अन्य में 'टूटे' की जगह 'टूटते हैं' होना चाहिए या बीच में 'चूकता हूँ' की जगह 'चूका' होना चाहिए। 'सरकार के पास प्रान्त भर से जो समाचार मिले हैं।' में 'मिले हैं' की जगह 'आये हैं' होना चाहिए। या यदि हम अन्त में 'मिले हैं' ही रखना चाहें तो हमें वाक्य के आरम्भ में 'सरकार के पास' की जगह 'सरकार को' रखना पड़ेगा।

इन्हीं से मिलती-जुलती और भी अनेक ऐसी अवस्थाएँ हैं, जिनमें क्रियाओं का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। जैसे—'उनका विचार था कि हम ऐसा करें।' और 'उनकी इच्छा थी कि हम ऐसा करेंगे।' ये दोनों वाक्य क्रिया की दृष्टि से कुछ ठीक नहीं हैं। ये ठीक तभी होंगे, जब पहले वाक्य में 'कर' की जगह 'करेंगे' और दूसरे वाक्य में 'करेंगे' की जगह 'करें' होगा। यह अन्तर इन वाक्यों में आये हुए 'विचार' और 'इच्छा' शब्दों के कारण पड़ता है। 'विचार' कुछ कुछ निश्चय के पास तक पहुँचती हुई और 'इच्छा' से बहुत आगे बढ़ी हुई चीज है। हमारी इच्छा होती है कि हम यह काम करें। इसमें कोई काम करने को जी भर चाहता है, उसमें निश्चय का कोई भाव नहीं होता। पर जब हम कहते हैं—'हमारा विचार है' (या था) तब मानो हम कोरी 'इच्छा' से वहुत कुछ आगे बढ़कर निश्चय के कुछ पास पहुँच जाते हैं। अर्थात् हम कुछ सोच-समझकर पूरा

निश्चय तो नहीं, पर बहुत कुछ निश्चय-सा कर लेते हैं: और इसी लिए पहले वाक्य में 'करें' की जगह 'करेंगे' होना चाहिए।

कुछ अवसरों पर वाक्य में एक क्रिया के तुरन्त बाद ही दूसरी क्रिया आती है। कभी कभी एक ही क्रिया हमारा पूरा विचार या उसका काल ठीक तरह से प्रकट करने में असमर्थ होती है: इसलिए हमें उसके साथ कोई और क्रिया रखनी पड़ती है। ऐसी क्रिया संयुक्त क्रिया कहलाती है। 'मैं जाता था।' और 'मैं जा रहा था।' में बहुत अन्तर है। यह अन्तर इन दो वाक्यों से प्रकट हो जाता है—(१) 'मैं जाता था तो वह मुझे देखकर खड़ा हो जाता था।' और (२) 'मैं जब जा रहा था, तब वह मुझे रास्ते में मिला।' इस प्रकार की क्रियाओं के भेद आपने व्याकरण में पढ़े ही होंगे। अतः यहाँ इनका अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं। इनके सम्बन्ध में ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि इनके प्रयोग में भूल करने से कभी कभी वाक्य का अर्थ बिलकुल बदल जाता है। एक बार एक सज्जन उदयपुर गये थे। वहाँ की यात्रा का जो वर्णन उन्होंने किया था, उसमें उन्होंने लिखा था—'मैंने वह गुफा भी देखी, जहाँ राणा प्रताप छिपे हुए थे।' इसमें संयुक्त क्रिया 'हुए' बहुत ही भ्रम उत्पन्न करने-वाली है। इससे वाक्य का आशय यह हो जाता है कि लेखक ने जिस समय वह गुफा देखी थी, उस समय राणा प्रताप उसमें छिपे हुए थे। पर लेखक गये थे राणा प्रताप के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद। इसलिए वाक्य में 'छिपे हुए थे' की जगह केवल 'छिपे थे' होना चाहिए था। 'तुम तो उनसे मिले हो।' और 'तुम तो उनसे मिले हुए हो।' में अर्थ के विचार से बहुत बड़ा अन्तर है। पहले वाक्य का अर्थ है कि उनसे तुम्हारी भेंट हो चुकी है। पर दूसरे वाक्य का अर्थ है—तुम उनके पक्ष या गुट में हो। अब यदि हम इन दोनों वाक्यों की जगह कहें—'तुम तो उनसे मिल चुके हो।' तो इसका

आशय दूसरे वाक्य से तो बिलकुल अलग होगा ही, पहले वाक्य से भी कुछ अलग होगा। 'तुम तो उनसे मिले हो।' में उतना निश्चय या जोर नहीं है, जितना 'तुम तो उनसे मिल चुके हो।' में है। 'कोई चिन्ता उन्हें सता नहीं सकती थी।' कहना तो बहुत कुछ ठीक हो सकता है, पर 'कोई चिन्ता उन्हें सता नहीं पाती थी।' कहना इस-लिए ठीक नहीं है कि इसका आशय यह हो जायगा कि 'चिन्ता' उन्हें सताने का प्रयत्न तो करती थी, पर सफल नहीं होती थी। इसी लिए संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग में और भी अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है।

१२

वचन

यों तो हम किसी की कही हुई बात को भी 'वचन' कहते हैं: जैसे—'यह व्यासजी का वचन है।' और किसी के किये हुए वादे को भी 'वचन' कहते हैं; जैसे—'उन्होंने यह काम करने का वचन दिया है।' पर व्याकरण में 'वचन' का अर्थ इन सबसे निराला है। साधारणतः व्याकरणों में यही कहा जाता है कि संज्ञा, क्रिया, विशेषण और क्रिया-विशेषण आदि के जिस रूप से संख्या का ज्ञान होता है, उसे वचन कहते हैं। पर इतने से विद्यार्थियों का सन्तोष नहीं हो सकता; इसलिए हम यह बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से बतलाते हैं।

मान लीजिए कि आप किसी दुकान पर लिखने के लिए कापी लेने जाते हैं। आप वहाँ जाकर कहते हैं-'हमें कापी चाहिए।' दुकानदार पूछेगा-'कितनी कापियाँ? आप कहेंगे—एक या दो या चार या दस या जितनी आपको चाहिएँ। जब आपको एक कापी की आवश्यकता होगी, तब आप कहेंगे—एक कापी दो। पर यदि आपको एक से अधिक कापियों की आवश्यकता होगी तो आप कहेंगे—दो कापियाँ, चार कापियाँ आदि। आप यह भी कह सकते हैं—एक दरजन या एक कोड़ी। अथवा यदि कापियाँ रुपये के हिसाब से बिकती हों तो आप यह भी कह सकते हैं—एक रुपये की या दो रुपये की। पर सभी

अवस्थाओं में एक कापी के लिए आपको कहना पड़ेगा—कापी ; और एक से अधिक के लिए कहना पड़ेगा—कापियाँ। यदि आपने किसी बरात में दस घोड़े देखे होंगे तो आप यह नहीं कहेंगे—हमने बरात में दस घोड़ा देखा था। क्यों? इसी लिए कि वह वचन के विचार से अशुद्ध है। आपका वाक्य शुद्ध तभी होगा, जब आप कहेंगे—हमने बरात में दस घोड़े देखे थे। आप यह भी नहीं कह सकते—हमने बरात में दस घोड़े देखा था। बल्कि आपको कहना पड़ेगा—देखे थे। इससे सिद्ध होता है कि एक हो तो 'घोड़ा' और एक से अधिक हो तो 'घोड़े' और एक हो तो 'देखा था' और एक से अधिक हों तो 'देखे थे' कहना ही शुद्ध होगा। हम कहते हैं—'हम मोटे कपड़े पहनते हैं।' और 'हम इतने मोटे कपड़े पहनते हैं, जितने और लोग नहीं पहनते।' इन वाक्यों में 'वचन' के कारण ही 'मोटा' विशेषण तो 'मोटे' हो गया और 'इतना' क्रिया-विशेषण 'इतने' हो गया। इससे सिद्ध होता है कि 'वचन' संख्या का बोध करानेवाला वह तत्त्व है, जिसके कारण संज्ञा, क्रिया, विशेषण और क्रिया-विशेषण आदि के रूप बदल जाते हैं। व्याकरण में इस प्रकार के रूप-परिवर्त्तन को 'विकार' कहते हैं, और जिन शब्दों के रूप में इस प्रकार के परिवर्त्तन होते हैं, वे 'विकारी' कहलाते हैं। यहाँ हम एक और बात भी बतला देना आवश्यक समझते हैं। वह यह कि वचन का सम्बन्ध वस्तु की संख्या से होता है, उसकी मात्रा या परिमाण आदि से नहीं। हम सदा यही कहेंगे—'सेर भर आलू से काम न चलेगा।' यह नहीं कहेंगे—'सेर भर आलुओं से काम न चलेगा।' कारण यही है कि व्याकरण की दृष्टि से हमें 'सेर भर' का ही ध्यान रखना पड़ेगा, 'आलू' का नहीं। हाँ, जब उस 'सेर' के साथ भी कोई संख्या लगेगी, तब वाक्य के वचन पर उसका अवश्य प्रभाव पड़ेगा। जैसे—'तुमने सेर भर की जगह दो सेर आलू भेज दिये।' यही बात

एक बोरा मैदा आया है।' और 'चार बोरे मैदा आया है।' के सम्बन्ध में भी है।

इसके सिवा वचन के कारण सर्वनाम के रूपों में भी परिवर्तन होता है। 'वह' का बहुवचन 'वे' और 'यह' का बहुवचन 'ये' होता है। 'किस' का बहुवचन 'किन' और 'उस' का बहुवचन 'उन' होता है। लिंग के कारण क्रियाओं का जो रूप बदलता है, उस पर भी वचन का प्रभाव पड़ता है। जैसे—'वह जाता था।' और 'वे जाते थे।' 'वह जाती थी।' और 'वे जाती थीं।' इस प्रकार वचन का प्रभाव प्रायः सारे वाक्य पर पड़ता है।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एक-वचन, द्विवचन और बहु-वचन। मराठी में भी इसी प्रकार तीन वचन होते हैं। पर हिन्दी में तथा बहुत सी दूसरी भाषाओं में दो ही वचन होते हैं—एक-वचन और बहुवचन। जहाँ हमारा अभिप्राय किसी एक चीज से होता है, वहाँ हम एक-वचन का प्रयोग करते हैं; और जहाँ एक से अधिक चीजों का अभिप्राय होता है, वहाँ बहुवचन का। तीसरा वचन, जो द्विवचन कहलाता है और जो केवल दो चीजों का बोधक होता है, हमारे यहाँ नहीं है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि वचन के सम्बन्ध में लोग किस प्रकार की भूलें करते हैं। 'राजा साहब बजरों पर सवार होकर मेला देखने जाते थे।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि राजा साहब तो एक ही थे। वे 'बजरों' पर कैसे सवार होते थे? वे तो जब सवार होते होंगे, तब एक ही बजरे पर होते होंगे। एक आदमी एक साथ कई बजरों पर सवार नहीं हो सकता। हाँ, उसके साथ कई बजरे हो सकते हैं। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—'वृक्षों पर कोयल कूक रही थी।' वृक्ष तो हुए कई और कोयल हुई एक। एक कोयल कई वृक्षों पर कैसे कूक सकती है? इसलिए होना

चाहिए—'वृक्षों पर कोयलें कूक रही थीं।' या 'वृक्ष पर कोयल कूक रही थी।' 'उन लोगों को रस्सियों में बाँधकर कुत्ते की तरह घसीटा गया।' भी ठीक नहीं है। होना चाहिए—'कुत्तों की तरह ......।' 'उन्होंने गोले और तोपों से आक्रमण किया।' में 'गोले' की जगह 'गोलों' होना चाहिए। 'वहाँ मुझसे और उससे क्रमशः निम्न-लिखित बात हुई।' भी इसलिए ठीक नहीं है कि 'क्रमशः' से जान पड़ता है कि क्रम से कई बातें हुईं। इसलिए इस वाक्य में 'बात' की जगह 'बातें' होना चाहिए।

'मनुष्य में ऐसे बहुत से गुण हैं जो उनके पूर्वजों में नहीं थे।' में या तो 'मनुष्य' की जगह 'मनुष्यों' होना चाहिए, या 'उनके' की जगह 'उसके'। 'वह मैं ही हूँ, जिन्होंने आपको बचाया था।' में 'जिन्होंने' की जगह 'जिसने' होना चाहिए। 'सभी श्रेणी के लोग वहाँ आये थे।' में 'श्रेणी' की जगह 'श्रेणियों' होना चाहिए। 'सुनते सुनते कान पक गया।' की जगह 'सुनते सुनते कान पक गये।' और 'यह नाना प्रकार का रूप धारण करता है।' की जगह 'यह नाना प्रकार के रूप धारण करता है।' होना चाहिए। 'हममें से हर एक इसके लिए प्रयत्न कर सकते हैं।' इसलिए ठीक नहीं है कि 'हर एक' केवल 'एक' का सूचक है; इसलिए 'प्रयत्न कर सकते हैं' की जगह 'प्रयत्न कर सकता है' होना चाहिए। 'इस मत-भेद के कारण हर आदमी अपने अपने विचारों के अनुसार काम कर सकता है।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'हर' तो एक-वचन का सूचक है और 'अपने अपने' बहुवचन का। इसलिए यदि हम वाक्य में 'हर' रक्खें, तो हमें 'अपने अपने' की जगह केवल 'अपने' लिखना होगा। या यदि हम 'अपने अपने' ही रखना चाहें तो हमें 'हर आदमी' की जगह 'सब लोग' रखना पड़ेगा; और इसी के अनुसार अन्त में क्रम से या तो 'काम कर सकता है' होगा या 'काम कर सकते हैं।'

'उसकी माताजी उससे बहुत प्रेम करती थी।' में 'थी' की जगह 'थीं' होना चाहिए। 'मेरे बहुत से विचारों को लोग व्यर्थ का समझते हैं।' भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ 'विचार' तो 'बहुत से' हैं पर 'का' एक-वचन है। इसलिए 'व्यर्थ का' की जगह 'व्यर्थ के' होना चाहिए। यों देखने में यह वाक्य भले ही खटकता हो, पर व्याकरण की दृष्टि से है शुद्ध।

पर हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'सब लोग अपनी सम्मति दें।' और 'सब लोग अपनी-अपनी सम्मति दें।' में अर्थ के विचार से बहुत अन्तर है। यदि हमारा अभिप्राय यह हो कि सब लोग आपस में मिलकर एक निश्चय कर लें और तब उस निश्चय के अनुसार सब लोग मिलकर एक ही सम्मति दें, तब तो 'सब लोग अपनी सम्मति दें।' कहना ही ठीक होगा। पर यदि हमारा अभिप्राय यह हो कि सब लोग अलग-अलग सम्मति दें, तब 'सब लोग अपनी-अपनी सम्मति दें।' कहना ठीक होगा।

यदि वाक्य में कई संज्ञाएँ एक साथ आवें और अर्थ के विचार से सब संज्ञाएँ एक ही तरह की हों, तब उन संज्ञाओं के रूप भी एक-से होने चाहिएँ। यह कहना ठीक नहीं है—'उन्होंने बैल, घोड़े और हाथियों के व्यापार में बहुत धन कमाया था।' क्योंकि व्यापार के लिए जिस प्रकार बहुत से हाथी आवश्यक हैं, उसी प्रकार बहुत से बैल और घोड़े भी। इसलिए वाक्य का ठीक रूप होगा—'उन्होंने बैलों, घोड़ों और हाथियों के व्यापार में बहुत धन कमाया था।' 'ग्रामीण और डाकुओं में लड़ाई' कहना तभी ठीक होगा, जब ग्रामीण एक ही हो और डाकू कई हों। यदि ग्रामीण भी कई हों तो हमें 'ग्रामीणों और डाकुओं में लड़ाई' कहना पड़ेगा। 'अनेक स्थानों से ऐसा समाचार आता रहता है......।' की जगह 'अनेक स्थानों से ऐसे समाचार आते रहते हैं......।' कहना ठीक है; क्योंकि अनेक स्थानों

से आनेवाले समाचार भी अनेक ही होंगे। यदि सब स्थानों से एक ही समाचार आता हो, तो भी इस कारण हमें 'ऐसे समाचार' रखना पड़ेगा कि वाक्य के अन्त में हम कहते हैं—'आते रहते हैं।' और इससे यह सूचित होता है कि आज एक स्थान से समाचार आया, कल दूसरे स्थान से और परसों तीसरे स्थान से। और इसलिए समाचार एक-से होने पर भी संख्या में एक से अधिक होंगे। इसी सिद्धांत के अनुसार 'इस दो वर्षों की अवधि में...... ।' कहना भी ठीक नहीं है। होना चाहिए 'इन दो वर्षों की अवधि में...... ।' अथवा 'दो वर्षों की इस अवधि में...... ।'

अब हम आपको वचन के सम्बन्ध में एक और प्रकार का अन्तर बतलाना चाहते हैं। हम कहते हैं—'चार हाथोंवाले विष्णु की मूर्त्ति हमारे सामने थी।' क्यों? इसी लिए कि विष्णु की उस मूर्त्ति के चार हाथ थे। पर हम बाजार में जाकर 'चार हाथ (या आठ हाथ या दस हाथ) वाली धोती' ही माँगते हैं, 'चार हाथों (या आठ हाथों या दस हाथों) वाली धोती, नहीं माँगते। क्यों? इसी लिए कि धोती के चार (या आठ या दस) हाथ नहीं होते, बल्कि 'चार (आठ या दस) हाथ' धोती की केवल लम्बाई का सूचक है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं—'उसकी हत्या छुरे से हुई थी।' तब हम इस बात का विचार नहीं करते कि उसके शरीर पर छुरे के दो घाव लगे थे या चार या दस। हम तो यही सूचित करना चाहते हैं कि जिस शस्त्र से उसकी हत्या हुई थी, वह छुरा था, तलवार या कटार नहीं। पर 'झुंडों के झुंड देहाती वहाँ आ पहुँचे।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'झुंड के झुंड' एक ऐसा मुहावरा है, जिसके रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन या विकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार जब किसी ओर से हमें लगातार बहुत से घोड़े आते हुए दिखाई देंगे, तब हम कहेंगे—'उधर से घोड़े पर घोड़े चले आ रहे हैं।'; क्योंकि मुहावरे

के अनुसार यही ठीक होगा। यदि हम कहें—'उधर से घोड़ों पर घोड़े चले आ रहे थे।' तो इसका अर्थ यह हो जायगा कि बहुत से घोड़ों पर लदे हुए बहुत से घोड़े आ रहे थे। ये सब बातें सूचित करती हैं कि वचन ठीक रखने के लिए हमें बहुत सी बातों का विचार करना पड़ता है। और जहाँ हम इस प्रकार का विचार नहीं करते, वहाँ और का और अर्थ हो जाता या हो सकता है।

कुछ अवसरों पर वचन का ठीक ध्यान न रखने के कारण अर्थ में बहुत गड़बड़ी हो जाती है। जैसे, एक प्रसिद्ध मुहावरा है—'पैर (या पाँव) न उठना।' कभी-कभी ऐसा होता है कि थकावट, भय या शोक आदि के कारण हमसे चला या आगे बढ़ा नहीं जाता। उस समय हम कहते हैं—'मैं तो बहुत प्रयत्न करता था, पर मेरा पैर ही नहीं उठता था।' कुछ लोग इसकी जगह भूल से कभी-कभी कह जाते हैं—'मेरे पैर ही नहीं उठते थे।' पर ऐसा कहना उसी अवस्था में ठीक होगा, जब हम रोग आदि से पीड़ित होने के कारण पड़े-पड़े अपने दोनों पैर एक-साथ उठाने का प्रयत्न करें, पर उठा न सकें। पर चलने या आगे बढ़ने में हम कभी दोनों पैर एक-साथ नहीं उठाते, बल्कि जब पहले एक पैर उठाकर आगे रख लेते हैं, तब दूसरा पैर उठाते हैं। इसी लिए चलने के सम्बन्ध में 'मेरा पैर ही नहीं उठता था।' कहना ही ठीक है। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—'ज्यों ही हमने घर से पैर निकाले, त्यों ही पानी बरसने लगा।' वास्तव में होना चाहिए—'ज्यों ही हमने घर से पैर निकाला...... ।' 'पैर निकाले' का प्रयोग तो उसी समय ठीक हो सकता है, जब हम कहीं बैठे हों और अपने दोनों पैर उठाकर खिड़की या दरवाज़े आदि में से बाहर की ओर करें। इस प्रकार के प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से ठीक न होने के सिवा मुहावरे की दृष्टि से भी ठीक नहीं होते। मुहावरे तो तभी ठीक होंगे, जब वे व्याकरण और प्रयोग की दृष्टि से

भी ठीक हों और अपने बँधे हुए शब्दों में भी हों। इसलिए इस प्रकार के प्रयोग करते समय बहुत सावधान रहना चाहिए।

वचन के सम्बन्ध में ध्यान रखने की कुछ और बातें भी हैं। हिन्दी में कुछ शब्द ऐसे हैं जो सदा बहुवचन में ही आते हैं, पर जिन्हें लोग प्रायः भूल से एकवचन में लिख जाते हैं। जैसे—दर्शन, प्राण, हस्ताक्षर, आँसू आदि। 'मैं कल आपका दर्शन करूँगा।' 'उसका प्राण निकल गया।', 'उसने पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया।' और 'उसकी आँखों से आँसू बह रहा था।' सरीखे प्रयोग अशुद्ध होते हैं। इन वाक्यों के शुद्ध रूप होंगे—'मैं कल आपके दर्शन करूँगा।', 'उसके प्राण निकल गये।', 'उसने पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये।' और 'उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।' इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो बहुवचन के सूचक होने पर भी संस्कृत व्याकरण के अनुसार अविकारी हैं और इसी लिए जिनके रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन या विकार नहीं होना चाहिए। प्रायः लोग लिखते हैं—'वहाँ अनेकों आदमी इकट्ठे हो गये।' और 'मैंने उन्हें अनेकों बार समझाया।' पर यहाँ 'अनेकों' रूप इसलिए ठीक नहीं है कि 'अनेक' एक से अधिक का सूचक होने के सिवा अविकारी शब्द है। होना चाहिए—'वहाँ अनेक आदमी इकट्ठे हो गये।' और 'मैंने उन्हें अनेक बार समझाया।' पर हाँ यदि हम 'अनेक' का प्रयोग विशेषण के रूप में न करके संज्ञा के रूप में करें, तो बात दूसरी है। उस दशा में हम कह सकते हैं—'अनेकों का यह मत है।' इसी प्रकार 'इस बात में सबों ने उसका साथ दिया।' और 'अनेक ऋषि-मुनि आदियों का यही मत है।' कहना भी ठीक नहीं है। 'सब' का रूप सदा 'सब' और 'आदि' का रूप सदा 'आदि' ही रहता है। उन्हें 'सबों' और 'आदियों' रूप देना ठीक नहीं है। कुछ लोग 'किन' का रूप 'किन्हीं' कर देते हैं। यह भी ठीक नहीं है। 'किन्हीं लोगों ने'

की जगह 'कुछ लोगों ने' होना चाहिए। 'सामग्री' है तो अनेक प्रकार की और अनेक चीजों के समूह का नाम, फिर भी इसका प्रयोग सदा एकवचन में होता है। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है—'हमने सब सामग्रियाँ इकट्ठी कर ली हैं।' इसकी जगह 'हमने सब सामग्री इकट्ठी कर ली है।' कहना ही ठीक है।

इसी प्रकार के कुछ और शब्द हैं जो होते तो दो वस्तुओं के सूचक हैं, पर जिनका प्रयोग एक-वचन में ही होता है। जैसे, जूता और जोड़ या जोड़ा आदि। दोनों पैरों के लिए जूते भी दो अलग-अलग होते हैं और 'जोड़ा' में भी कोई दो चीजें होती हैं। पर या तो उनका व्यवहार एक साथ होता है या वे आपस में एक दूसरे से मिली रहती हैं; और इसी लिए उनके सूचक शब्दों का प्रयोग भी एक-वचन में होता है। हम कहते हैं—'हमारा जूता खो गया।' या 'आज हमने एक जोड़ा धोती खरीदी है।' हम यह नहीं कहते—'हमारे जूते खो गये।' या 'हमने एक जोड़ा धोतियाँ खरीदी हैं।' पर यदि हम कई आदमी एक साथ अपने-अपने लिए जूता या धोती-जोड़ा खरीदें, तो हम कहेंगे—'आज हम लोगों ने जूते (या धोती-जोड़े) खरीदे हैं।'

एक बात और है। कुछ लोग कभी कभी विदेशी भाषाओं के कुछ शब्दों के बहुवचन रूपों का प्रयोग करते हैं। जैसे—'वहाँ पाँच फीट लम्बा साँप निकला था।' इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि 'फुट' शब्द का बहुवचन 'फीट' अँगरेजी में होता है। हम अँगरेजी से 'फुट' शब्द तो लेते या ले सकते हैं, पर यदि हमें उसका बहुवचन बनाना हो तो हम अपने ही व्याकरण के नियम के अनुसार उसका रूप रक्खेंगे, अँगरेजी व्याकरण के अनुसार नहीं। और हमारे व्याकरण में कोई ऐसा नियम नहीं है, जिससे हम 'फुट' का बहुवचन 'फीट' बना सकते हों। इसलिए हमें कहना होगा—'वहाँ पाँच फुट लम्बा

साँप निकला था।' इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—'उन्होंने सब कागजात हमें दिखलाये।' क्योंकि हम 'कागज' शब्द ही लेते या ले सकते हैं; उसका बहुवचन रूप 'कागजात' नहीं। इसलिए हमें कहना चाहिए—'उन्होंने सब कागज हमें दिखलाये।' इसी प्रकार 'हमने आमेर के महलात देखे।' की जगह हमें कहना चाहिए—'हमने आमेर के महल देखे।' और 'उसने अफसरान से मुलाकात की।' की जगह कहना चाहिए—'उसने अफसरों से मुलाकात की।' इसके विपरीत 'देहात' और 'औकात' आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो वास्तव में हैं तो बहुवचन ही, पर हिन्दी में जिनका प्रयोग सदा एक-वचन में होता है। फारसी में 'देह' का अर्थ है—गाँव; 'देहात' उसका बहुवचन रूप है। पर हिन्दी में हम कहते हैं—'यह शहर है, देहात नहीं है।' और 'अनाज देहातों में पैदा होता, शहरों में नहीं।' इसी प्रकार 'औकात' भी 'वक्त' का बहुवचन है। पर हमारे यहाँ न तो वह इस अर्थ में चलता है और न बहुवचन माना जाता है। यहाँ तक कि हम उसका प्रयोग पुलिङ्ग में नहीं, बल्कि स्त्री-लिंग में करते हैं। अर्थात् हमने उसके लिंग, वचन और अर्थ सभी बदल दिये हैं। हम उसका प्रयोग 'सामर्थ्य' और 'आर्थिक योग्यता' या 'वैभव' आदि के अर्थ में करते हैं। जैसे—'तुम्हारी क्या औकात है जो तुम हमारे मुँह लगो।' और 'अब तो उनकी औकात लाखों की हो गई है।' आदि।

१३

लिंग

व्याकरण में लिंग वह तत्त्व है, जिससे यह जाना जाता है कि हम जिसके विषय में कोई बात कहते हैं, वह पुरुष-जाति का है या स्त्री-जाति का। यदि हम किसी पुरुष या लड़के के सम्बन्ध में कोई बात कहेंगे, तो एक तरह से कहेंगे; और यदि किसी स्त्री या लड़की के सम्बन्ध में कहेंगे, तो कुछ दूसरी तरह से। जैसे—'राम आता है।' और 'कमला पढ़ती है।' यही बात बहुत से पशुओं आदि के सम्बन्ध में भी होती है। जैसे, हम कहते हैं—'घोड़ा दौड़ता है।' और 'गाय चरती है।' यह इसी लिए कि 'राम' और 'घोड़ा' पुल्लिंग हैं, 'कमला' और 'गाय' स्त्री-लिंग। यह इतनी सीधी और सहज बात है कि इसके सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पर कठिनता तब होती है, जब हम यह जानते ही नहीं कि जिसके बारे में हम कुछ कह रहे हैं, वह पुरुष-जाति का है या स्त्री-जाति का। पर जब व्याकरण में लिंग का तत्त्व आ जाता है, तब हमें इस प्रकार की कठिनाइयों से बचने के लिए कुछ मार्ग निकालना ही पड़ता है। कुछ पशुओं और पक्षियों आदि के सम्बन्ध में हम यह मान लेते हैं कि उनके नामों का प्रयोग हम केवल स्त्री-लिंग में अथवा केवल पुल्लिंग

में करेंगे। जैसे कौआ, खटमल, मच्छर, कछुआ आदि शब्दों को हमने पुल्लिंग और चील, मक्खी, चिड़िया, मैना, गिलहरी और तितली आदि को स्त्री-लिंग मान लिया है। इन जीवों में भी स्त्री और पुरुष के भेद होते तो हैं, पर हम उस भेद के फेर में नहीं पड़ते; और अपना काम चलाने के लिए उन्हें किसी एक लिंग का मान लेते हैं। यों भले ही हम किसी अवसर पर 'कछुआ' का स्त्री-लिंग 'कछुई' या 'चिड़िया' का पुल्लिंग 'चिड़ा' बना लें, पर साधारण नियम वही है, जो हम अभी बतला चुके हैं।

यहाँ तक तो जैसे-तैसे काम चल जाता है। पर इससे आगे एक और ऐसा क्षेत्र आता है, जिसमें पहुँचने पर हमारे सामने बहुत बड़ी कठिनता आती है। वह क्षेत्र है जड़ पदार्थों का; जैसे, नदी, पहाड़, जंगल, झोंपड़ी, मकान, महल, मन्दिर, पत्थर, मिट्टी, सोना, कली, फूल, पेड़-पौधे और लताएँ आदि। यदि बात यहीं तक रहे, तो भी किसी प्रकार काम चला लिया जाय। पर हमारी बात-चीत के विषय अनन्त होते हैं; इसलिए उसमें भाववाचक संज्ञाएँ, अनेक प्रकार के मान और परिमाण, नाप-जोख, तरह तरह के काम-धन्धे, व्यापार आदि हजारों बातें होती हैं। जब व्याकरण में एक बार लिंग का तत्त्व आ जाता है, तब उसका विचार हमें सभी शब्दों के लिए करना पड़ता है। इसी लिए संस्कृत, अँगरेजी और मराठी आदि कुछ भाषाओं में एक तीसरा लिंग और होता है, जिसे नपुंसक लिंग कहते हैं। इस प्रकार उन भाषाओं में यह कठिनता कुछ सहज में दूर तो हो जाती है, पर वचन और क्रिया के रूपों आदि के झगड़े बढ़ जाते हैं। पर जिन भाषाओं में दो ही लिंग होते हैं, उनमें झगड़े तो कुछ कम रहते हैं, पर शब्दों के लिंग-निर्णय की कठिनता बहुत बढ़ जाती है।

एक बात और है। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें लिंग का भेद

केवल संज्ञाओं और सर्वनामों में ही होता है। उनमें लिंग के कारण विशेषण, क्रिया-विशेषण या क्रिया आदि के रूप नहीं बदलते। जैसे, अँगरेजी। बहुत कुछ यही बात हमारे यहाँ की बँगला भाषा में भी है। पर हमारी हिन्दी में यह बात नहीं है। हमारे यहाँ बहुत से विशेषणों और क्रिया-विशेषणों तथा सभी क्रियाओं के रूप भी लिंग के अनुसार बदलते हैं। हमें कहना पड़ता है—'मोटा आदमी' और 'मोटी औरत'। यहीं तक नहीं, हमें 'मोटी अक्ल' से 'मोटा हिसाब' भी लगाना पड़ता है; और 'इतनी बात' समझाने के लिए 'इतना प्रयत्न' करना पड़ता है। हमारा 'कुरता सिलता' है तो 'कमीज धुलती' है। हमें 'सब विषय समझाने पड़ते हैं' और 'सब बातें बतलानी पड़ती हैं।' इसके सिवा हमारे यहाँ कुछ स्थानिक और प्रान्तिक विलक्षणताएँ भी हैं। जो 'गेंद' और सब जगह पुल्लिंग माना जाता है, वही ब्रज में स्त्री-लिंग माना जाता है। 'दही' और 'मोती' आदि कुछ शब्द पुल्लिंग होने पर भी कुछ स्थानों में स्त्री-लिंग माने और बोले जाते हैं। 'तार' और 'गेहूँ' आदि कुछ शब्द हैं तो पुल्लिंग ही, पर पंजाब में वे स्त्री-लिंग माने और बोले जाते हैं। यही नहीं, हम स्वयं कुछ शब्द एक अर्थ में पुल्लिंग और दूसरे अर्थ में स्त्री-लिंग बोलते और लिखते हैं; और वास्तव में वे हैं भी वैसे ही। जैसे—'हम रामायण की टीका पढ़ते हैं।' पर 'माथे पर लम्बा टीका लगाते हैं।' हम कहते हैं—'रात के समय चाँद निकलता है।' और 'मारे खर्च के चाँद गंजी हो गई।' हम लड़कियों के नाम तो 'तारा' रखते हैं, पर साथ ही कहते हैं—'आकाश में तारे छिटके हुए थे।' इन्हीं सब कारणों ने मिल-जुलकर हिन्दी में लिंग की एक ऐसी समस्या खड़ी कर दी है, जिसे सुलझाना बहुत ही कठिन है। हिन्दी में जितना पेचीला विषय लिंग का है, उतना पेचीला और कोई विषय नहीं है।

पर मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह अपने सामने पड़ने-

वाली कठिनाइयाँ दूर करता रहे। इसलिए जहाँ तक हो सकता है, कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। यह बात दूसरी है कि उसमें हमें पूरी पूरी सफलता न मिले। और लिंग के सम्बन्ध में हमें यह मानना पड़ता है कि उसके सम्बन्ध में ठीक ठीक और सन्तोषजनक नियम अभी तक नहीं बन सके हैं और न भविष्य में जल्दी बनने की कोई आशा दिखाई देती है। इसलिए अब तक इस विषय में जो प्रयत्न हुए हैं, उन्हीं से हमें सन्तोष करना पड़ता है। पर न तो वे प्रयत्न ही पूरे हैं और न उन प्रयत्नों से बने हुए नियम ही व्यापक हैं। इसलिए यदि लिंग सम्बन्धी हमारा यह विवेचन भी अधूरा रह जाय, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

व्याकरण में मुख्य रूप से शब्दों का ही विचार होता है। उसमें शब्दों के द्वारा सूचित होनेवाले प्राणियों या पदार्थों आदि का भी विचार होता तो है, पर उसका उतना महत्त्व नहीं होता, जितना स्वयं शब्दों का होता है। ऊपर हमने 'कौआ' और 'मक्खी' आदि के जो उदाहरण दिये हैं, वे इसी सिद्धान्त के सूचक हैं। शब्दों के लिंग का निर्णय दो बातों से होता है। एक तो उनके रूप से; और दूसरे, उनके अर्थ से। जैसे कपड़ा, पैसा, भीड़, लकड़ी आदि ऐसी चीजें हैं, जिनमें स्त्री और पुरुष का कोई भेद होता ही नहीं। कट्टरपन, समझौता, दिन, रात, सवेरा और सन्ध्या आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं। जिन प्राणियों में स्त्री और पुरुष का भेद बिल्कुल निश्चित या प्रत्यक्ष होता है, उनके सूचक शब्दों का लिंग उनके अर्थ के आधार पर निश्चित होता है। जैसे लड़का, लड़की, घोड़ा, घोड़ी आदि। एक बात और है। हमारे यहाँ के अधिकतर शब्द संस्कृत से आये हैं; इसलिए उनके लिंग का निर्णय भी बहुत-कुछ संस्कृत के आधार पर ही होता है। संस्कृत के कुछ तत्सम और हिन्दी के कुछ तद्भव शब्द ऐसे

भी हैं, जिनका लिंग हिन्दी में बदला गया है। जैसे अग्नि, आत्मा, देह, पवन और शपथ आदि संस्कृत में पुलिंग हैं, पर हिन्दी में इनका प्रयोग स्त्री-लिंग में होता है। तारा, देवता और व्यक्ति आदि शब्द संस्कृत में स्त्री लिंग होने पर भी हिन्दी में पुलिंग माने जाते हैं। इस प्रकार का अन्तर कुछ तद्भव शब्दों में भी है। जैसे संस्कृत में 'विन्दु' और 'तन्तु' आदि शब्द पुलिंग हैं, पर हिन्दी में उनसे बने हुए 'बूँद' और 'ताँत' आदि शब्द स्त्री-लिंग हैं। हम पहले कह चुके हैं कि संस्कृत के अधिकतर नपुंसक लिंग शब्द हिन्दी में पुलिंग होते हैं। परन्तु वस्तु, पुस्तक और आयु आदि संस्कृत के कुछ ऐसे नपुंसक-लिंग शब्द भी हैं, जो हिन्दी में स्त्री-लिंग माने जाते हैं। पर ऐसे शब्द बहुत थोड़े हैं। संस्कृत में बहुत से शब्द नपुंसक लिंग भी हैं; पर हिन्दी में उनमें से अधिकतर पुलिङ्ग ही माने जाते हैं। बहुत से शब्दों का लिंग समानता के आधार पर भी निश्चित होता है; और यह समानता या तो अर्थ की होती है या रूप की। जैसे, हमारे यहाँ 'गेंद' पुलिंग है तो हम अंग्रेजी के 'बाल' को भी पुलिंग मान लेते हैं; और 'प्रार्थना' तथा 'सूचना' स्त्री-लिंग हैं, इसलिए 'अपील' और 'रिपोर्ट' को भी स्त्री-लिंग मान लेते हैं। इसलिए लिंग निश्चित करने का हम इसे कोई अलग प्रकार नहीं कह सकते।

ये सब तो हुई सिद्धान्त की बातें। अब प्रत्यक्ष प्रयोग की बातें लीजिए। हिन्दी के तद्भव शब्दों के सम्बन्ध में पहली बात यह है कि जिन शब्दों के अन्त में 'ा' होता है, वे प्रायः पुलिंग माने जाते हैं; और जिनके अन्त में 'ी' होती है, वे स्त्री-लिंग। जैसे—चीता, मैदा, पैसा, सोना, लोहा, गन्ना, रायता, बाजरा, चना, आटा, चमड़ा, कटोरा आदि पदार्थ और रोना, गाना, आना, जाना, उठना, बैठना, आदि क्रियाएँ और भाववाचक संज्ञाएँ पुलिंग हैं। हिन्दी में दूसरी भाषाओं के जो शब्द आते हैं, उनमें से भी अधिकतर इसी नियम के

अनुसार पुल्लिंग होते हैं। जैसे—तमाशा, हैजा, पाजामा, सोडा, कोटा, कमरा, आदि पुल्लिंग हैं। स्त्री-लिंग शब्दों में रोटी, टोपी, मिट्टी, सवारी, कमेटी और चिमनी आदि हैं। यही बात गर्मी, सर्दी, गरीबी, अमीरी, उदासी, तैयारी आदि भाववाचक संज्ञाओं के सम्बन्ध में भी है।

पर संस्कृत के तत्सम शब्दों में कुछ और बात है। उनमें जिन शब्दों के अन्त में 'ा' होता है, वे प्रायः स्त्री-लिंग होते हैं। जैसे—दया, माया, लज्जा, सभा आदि। संस्कृत के जिन शब्दों के अन्त में 'ना' या 'ता' होता है, वे भी स्त्री-लिंग होते हैं। जैसे—प्रार्थना, वन्दना, रचना, घटना और उदारता, सुन्दरता, नम्रता, गम्भीरता, सज्जनता आदि। इसी सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत का 'देवता' शब्द भी वास्तव में स्त्री-लिंग ही है, पर हिन्दी में वह, आकारान्त होने के कारण, पुल्लिंग है। अरबी-फारसी के शब्दों में कुछ आकारान्त शब्द स्त्री-लिंग हैं और कुछ पुल्लिंग। जैसे—हवा, सजा, दवा और बला आदि स्त्री-लिंग हैं और मजा, रोजा, तकाजा आदि पुल्लिंग। हिन्दी के तद्भव शब्दों में जो डिबिया, पुड़िया, गुड़िया, बछिया आदि स्त्री-लिंग संज्ञाएँ हैं, वे दूसरे शब्दों से बनी हुई हैं। वे वास्तव में आकारान्त हैं भी नहीं, बल्कि उनके अन्त में 'इया' है। जैसे डिब्बा से डिबिया और बाछा से बछिया आदि शब्द बने हैं। ऐसे रूपों को अल्पार्थक स्त्री-लिंग रूप कहते हैं। इसी आधार पर 'खड़िया' सरीखे कुछ स्वतन्त्र शब्द भी स्त्री-लिंग माने जाते हैं। पर 'जड़िया' और 'फड़िया' सरीखे शब्द पुरुषवाचक होने के कारण पुल्लिंग ही होते हैं।

इन सब बातों का सारांश यही है कि जिन शब्दों में किसी प्रकार की कोमलता या अर्थ के विचार से लघुता आदि होती है, वे प्रायः स्त्री-लिंग के वर्ग में चले जाते हैं, और नहीं तो पुल्लिंग वर्ग में रहते हैं। संस्कृत और हिन्दी के कुछ प्रत्यय भी ऐसे हैं, जिनके लगने

पर शब्द स्त्री-लिंग या पुल्लिंग हो जाते हैं। संस्कृत के जिन भाव-वाचक शब्दों के अन्त में 'ता' प्रत्यय होता है, वे सब स्त्री-लिंग होते हैं। जैसे–लघुता, सुन्दरता, मधुरता, उत्तमता, सरलता आदि। और ऐसे जिन शब्दों के अन्त में 'त्व' प्रत्यय होता है, वे सब पुल्लिंग होते हैं। जैसे बन्धुत्व, लघुत्व, प्रभुत्व आदि। इसी प्रकार हिन्दी के जिन शब्दों के अन्त में 'वट' या 'आहट' आदि प्रत्यय होते हैं, वे सब स्त्री-लिंग होते हैं। जैसे–थकावट, लगावट, सजावट और मुस्कराहट आदि। और जिन शब्दों के अन्त में 'पन' प्रत्यय होता है, वे पुल्लिंग होते हैं। जैसे कट्टरपन, बड़प्पन, छुटपन आदि। ऐसे अवसरों पर शब्दों के रूप के अनुसार लिंग का निर्णय होता है।

हम पहले बता चुके हैं कि हिन्दी के जिन शब्दों के अन्त में 'ा' होता है, वे प्रायः पुल्लिंग होते हैं; और जिनके अन्त में 'ी' होता है, वे प्रायः स्त्री-लिंग होते हैं। प्रायः शब्दों के पुल्लिंग रूपों से स्त्री लिंग और स्त्री-लिंग रूपों से पुल्लिंग भी इसी सिद्धान्त के अनुसार बनते हैं। जैसे बकरा से बकरी, घोड़ा से घोड़ी, और गगरा से गगरी आदि। इसी सिद्धान्त के अनुसार हम आवश्यकता होने पर 'चिट्ठी' से 'चिट्ठा' सरीखे कुछ शब्द भी बना लेते हैं। पर कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनमें भेद तो केवल 'ा' और 'ी' का होता है, पर जिनमें स्त्री और पुरुषवाला अन्तर नहीं होता और जिनके अर्थ भी एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न होते हैं। जैसे कोठा और कोठी, अँगूठा और और अँगूठी, कोड़ा और कोड़ी, सट्टा और सट्टी आदि। कोठा और चीज है, कोठी और चीज। अँगूठा और चीज है, अँगूठी और चीज। इनमें आपस में पुल्लिंग और स्त्री-लिंगवाला भेद नहीं है और अर्थ भी बिल्कुल अलग प्रकार के हैं। इस प्रकार के कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनमें एक अवस्था में तो स्त्री-लिंग और पुल्लिंग का भेद होता है और दूसरी अवस्था में नहीं होता। जैसे—कुबड़ा और कुबड़ी।

जब तक ये विशेषण हैं, तब तक दोनों एक-दूसरे के स्त्री-लिंग या पुल्लिंग हैं। पर जब हम 'कुबड़ी' शब्द का संज्ञा के रूप में और छोटी टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी के अर्थ में प्रयोग करते हैं, तब 'कुबड़ा' से उसका वह सम्बन्ध नहीं रह जाता, जो विशेषण होने की दशा में होता है। इसी प्रकार 'बिल्ला' और 'बिल्ली' जब तक एक विशेष प्रकार के प्रसिद्ध प्राणी के अर्थ में आते हैं, तब तक तो वे एक दूसरे के स्त्री-लिंग या पुल्लिंग रूप होते हैं। पर जब हम 'बिल्ला' शब्द का प्रयोग कपड़े के उस टुकड़े के अर्थ में करते हैं, जो हमारे किसी दल आदि में होने का सूचक चिह्न होता है, तब 'बिल्ली' के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। इसके सिवा सती, सौत, गर्भवती, सधवा और धाय या दाई आदि कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जो वस्तुतः बने ही स्त्रियों के लिए हैं और इसी लिए जिनका कोई पुल्लिंग रूप नहीं होता।

हम पहले कह चुके हैं कि कुछ जीव-जन्तुओं के वाचक शब्द ऐसे हैं जो पुरुष और स्त्री दोनों जातियों के लिए प्रचलित हैं। जब ऐसे शब्दों में लिंग का भेद सूचित करना होता है, तब उनके पहले 'नर' और 'मादा' या 'पुरुष' और 'स्त्री' शब्द लगाये जाते हैं। जैसे नर मच्छर और मादा मच्छर; या पुरुष मछली और स्त्री मछली। कुछ शब्द ऐसे हैं जो पुल्लिंग और स्त्री-लिंग के अलग अलग वाचक होते हैं और उनके रूप भी अलग अलग होते हैं। जैसे वर और वधू या साहब और मेम आदि। कुछ ऐसे यौगिक शब्द भी हैं जो पुल्लिंग और स्त्री-लिंग शब्दों के योग से बने हैं। जैसे दाल-भात, रसोई-घर, लड़ाई-झगड़ा आदि। इनमें दाल, रसोई और लड़ाई तो स्त्री-लिंग हैं और भात, घर और झगड़ा पुल्लिंग। ऐसे शब्दों के लिंग अन्तिम शब्द के लिंग के अनुसार माने जाते हैं। अर्थात् ये तीनों और इसी प्रकार के दूसरे यौगिक शब्द पुल्लिंग हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार पाठशाला और धर्मशाला सरीखे शब्द स्त्री-लिंग होते

हैं। इसके सिवा प्रायः सभी पर्वतों के नाम पुल्लिंग और सभी नदियों के नाम स्त्री-लिंग होते हैं। यह बात दूसरी है कि नदियों में से कुछ को उनके विशाल आकार आदि के कारण हम 'नद' मान लेते हैं और इस प्रकार वे पुल्लिंग वर्ग में आ जाते हैं। भारत में सोन, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नद हैं, नदियाँ नहीं। इसी प्रकार अधिकतर वृक्षों के नाम पुल्लिंग और अधिकतर लताओं के नाम स्त्री-लिंग होते हैं। 'पृथ्वी' को छोड़कर बाकी सब ग्रहों के नाम पुल्लिंग और सब नक्षत्रों के नाम स्त्री-लिंग हैं। वारों के नाम पुल्लिंग और तिथियों के नाम स्त्री-लिंग होते हैं। ये सब ऐसी मोटी बातें हैं, जिनसे लिंग का निर्णय करने में बहुत सहायता मिल सकती है।

लिंग के सम्बन्ध में हमने अब तक जितनी बातें कही हैं, वे सब प्रायः संज्ञाओं के सम्बन्ध की ही हैं। अब हम संक्षेप में कुछ बातें विशेषण शब्दों के लिंग के सम्बन्ध में भी बतला देना चाहते हैं। हिन्दी में बहुत से तद्भव विशेषण ऐसे ही हैं जिनके पुल्लिंग और स्त्री-लिंग दोनों रूप अलग अलग होते हैं। जैसे, हम कहते हैं–नया कपड़ा नई पुस्तक, लम्बा आदमी, लम्बी छड़ी, नीला आकाश और नीली स्याही आदि। पर कुछ विशेषण ऐसे भी हैं, जिनका रूप दोनों लिंगों में एक-सा रहता है। जैसे बढ़िया घर और बढ़िया पुस्तक। पर जब ऐसे विशेषणों के साथ 'सा' आता है, तब उसका रूप लिंग के अनुसार बदल जाता है। जैसे बढ़िया-सा खिलौना और बढ़िया-सी किताब। संस्कृत के तत्सम विशेषणों में प्रायः सभी ऐसे हैं, जिनके रूप स्त्री-लिंग में संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार बदल जाते हैं। जैसे संस्कृत में मधुर का स्त्री० मधुरा, ललाम का ललामा और नवीन का नवीना हो जाता है। पर हिन्दी में प्रायः इन स्त्री-लिंग रूपों का व्यवहार नहीं होता; पुल्लिंग रूपों से ही सब जगह काम चलाया जाता है। इसी प्रकार सुखी, श्रेष्ठ और प्रथम-

द्वितीय आदि विशेषण भी दोनों लिंगों में समान रूप से काम में आते हैं। संस्कृत के कुछ विशेषण ऐसे भी हैं जो एक लिंग में विशेषण के सिवा संज्ञा भी होते हैं। जैसे 'चंचल' विशेषण का स्त्री लिंग रूप तो 'चंचला' है ही, पर यही 'चंचला' शब्द 'बिजली' का भी नाम (संज्ञा) है।

लिंग के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक और बात यह है कि जिन अवसरों पर लिंग का कोई प्रश्न नहीं होता, उन अवसरों पर सदा पुल्लिंग का ही व्यवहार होता है। उदाहरण के लिए, हम कहते हैं—'हम नहीं जानते कि वह पुरुष जाति का है या स्त्री जाति का'। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो हमें कहना चाहिए—'हम नहीं जानते कि वह पुरुष जाति का है या स्त्री-जाति की, क्योंकि 'वह' का प्रयोग तो पुरुष और स्त्री दोनों के लिए होता है। यदि 'वह' पुरुष हो तो हम कहते हैं-'वह पुरुष जाति का है' और यदि 'वह' स्त्री हो तो हम कहते हैं—'वह स्त्री जाति की है'। पर जहाँ हम जानते ही नहीं कि 'वह' पुरुष है या स्त्री, वहाँ हम इसी पुल्लिंगवाली प्रवृत्ति के कारण कहेंगे—'हम नहीं जानते कि वह पुरुष जाति का है या स्त्री जाति का।' ऐसे अवसरों पर 'स्त्री जाति की' कहना ठीक नहीं है। इसी प्रकार का एक और वाक्य लीजिए। 'हम जिसकी कल्पना करें, वह भी इसी में आ जाता है।' यहाँ 'जिस' किसी 'विचार' या 'पदार्थ' का भी बोधक हो सकता है, और किसी 'बात' या 'वस्तु' का भी। अर्थात् उसके अन्तर्गत स्त्रीलिंग शब्द भी हो सकता है और पुल्लिंग शब्द भी। फिर भी हम कहते हैं—'हम जिसकी कल्पना करें, वह भी इसी में आ जाता है।' यह नहीं कहते '........आ जाती है।'

जहाँ तक हो सकता है, हम स्वयं भी व्याकरण के पेचीले झगड़ों से बचना चाहते हैं और विद्यार्थियों को भी बचाना चाहते हैं; क्यों-

कि हम जानते हैं कि व्याकरण सम्बन्धी बहुत सी बातें जानने से शुद्ध प्रयोग के सम्बन्ध की थोड़ी सी बातें जानना कहीं अच्छा है। फिर भी हिन्दी में लिंग का विषय बहुत ही कठिन है; इसलिए यहाँ हमने मुख्यतः व्याकरण के सम्बन्ध में इतनी बातें बतलाई हैं। पर हमारा मुख्य उद्देश्य भाषा का प्रयोग या व्यवहार बतलाना है; इसलिए अब हम व्याकरण की जटिलताएँ छोड़कर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

लिंग के सम्बन्ध में हमें सदा बहुत ही सचेत रहना चाहिए। कारण यह है कि भाषा में लिंग सम्बन्धी भूलें सबसे बुरी समझी जाती हैं। किसी को इस प्रकार की भूलें करते देखकर लोग प्रायः कह बैठते हैं—'उहँ! उन्हें तो स्त्री-लिंग और पुलिंग तक का ज्ञान नहीं है।' अर्थात् लिंग सम्बन्धी भूलें करनेवालों का लोग प्रायः बहुत कम आदर करते हैं। इसलिए हमें प्रत्येक शब्द के सम्बन्ध में निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि वह स्त्री-लिंग है या पुलिंग। कभी कभी हमें कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं, जिनका प्रयोग कुछ लोग एक लिंग में करते हैं और कुछ लोग दूसरे लिंग में। ऐसे शब्दों को कोशों और व्याकरणों में प्रायः उभय-लिंग कहते हैं। पर यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो ऐसे शब्द बहुत ही कम होंगे। प्रायः होता यही है कि कुछ शब्दों के लिंगों के सम्बन्ध में प्रायः लोग भूल करते हैं; और उनके सम्बन्ध में कोश और व्याकरण बनानेवाले कुछ निश्चय न कर सकने के कारण ही उन्हें 'उभय लिंग' बतलाते हैं। इसलिए प्रत्येक शब्द का ठीक लिंग जानना बहुत आवश्यक है। 'उसकी लालच बढ़ती जा रही थी,' 'जाड़े की मौसिम में', 'गाड़ी की पहिया टूट गई' और 'तुम्हारी झूठ से तो मैं घबरा गया' सरीखे प्रयोग इसी लिए अशुद्ध और भद्दे हैं कि इनमें

'लालच', 'मौसिम', 'पहिया' और 'झूठ' शब्दों का प्रयोग ठीक लिंगों में नहीं हुआ है।

हम पहले बतला चुके हैं कि लिंग के कारण कुछ विशेषणों और क्रिया-विशेषणों के ही नहीं बल्कि क्रियाओं तक के रूप बदल जाते हैं। इसका आशय यही है कि किसी शब्द के लिंग का प्रभाव सारे वाक्य की बनावट पर पड़ता है। इसी लिए 'उनकी सन्तान युरोप में जाकर बस गये।' और 'उन्होंने ऐसी बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।' सरीखे वाक्य अशुद्ध होते हैं। इनमें 'बस गये' की जगह 'बस गई' और 'सोचा था' की जगह 'सोची थी' होना चाहिए। 'उन्होंने आँखें फेरना ही शुरू नहीं कीं, बल्कि उनके मार्ग में बाधाएँ भी खड़ा करना आरम्भ किया।' भी इसी प्रकार का अशुद्ध वाक्य है। इसमें 'शुरू नहीं कीं' की जगह 'शुरू नहीं किया' और 'खड़ा करना' की जगह 'खड़ी करना' होना चाहिए।

इसी प्रकार 'इस काम में देर लगना स्वाभाविक थी।' और उन्होंने उनसे भेंट करना चाही।' सरीखे प्रयोग भी अशुद्ध हैं। इनमें से पहले वाक्य में 'थी' की जगह 'था' और दूसरे वाक्य में 'चाही' की जगह 'चाहा' होना चाहिए। 'अच्छे साहित्य का प्राण तो सरसता ही हो सकता है।' में 'हो सकता है' की जगह 'हो सकती है' तो होना ही चाहिए; इसमें एक और भूल यह है कि 'प्राण' का प्रयोग एकवचन में हुआ है। (जैसा कि हम पहले कर चुके हैं 'प्राण' का प्रयोग सदा बहुवचन में होना चाहिए।) और उस अवस्था में वाक्य का रूप हो जायगा—'अच्छे साहित्य के प्राण तो सरसता ही हो सकती है।' क्योंकि होनेवाली चीज़ 'सरसता' है, न कि 'प्राण'। इसी प्रकार 'यह भारत सरकार स्वतन्त्र राज्य नहीं था।' भी इसलिए अशुद्ध है कि इसमें कर्त्ता 'भारत सरकार' है, 'स्वतन्त्र राज्य' नहीं। इसलिए वाक्य का शुद्ध रूप होगा—'यह भारत सरकार स्वतन्त्र

राज्य नहीं थी।' यद्यपि 'राज्य' के तुरन्त बाद 'थी' का प्रयोग खटकता है, पर है वही शुद्ध। हाँ यदि हम इस वाक्य की खटक मिटाना चाहें तो कह सकते हैं—'यह भारत सरकार स्वतन्त्र राज्य के रूप में नहीं था।' और वाक्य का वास्तविक रूप है भी यही।

लिंग का विचार हमें विभक्तियों तक में करना पड़ता है। कभी कभी ऐसा होता है कि 'का' या 'के' और 'की' के अन्तर के कारण ही वाक्य के अर्थ में बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है। जैसे—'एक प्रकार की मोतियों की माला' और 'एक प्रकार के मोतियों की माला।' पहला वाक्य 'माला' के प्रकार का सूचक है और यह बतलाता है कि मोतियों की मालाएँ अनेक प्रकार की होती हैं; और हम उनमें से एक प्रकार की 'माला' का जिक्र कर रहे हैं। पर दूसरे वाक्य से प्रकट होता है कि 'मोती' कई प्रकार के होते हैं; और उनमें से एक प्रकार के 'मोतियों' की माला का हम जिक्र कर रहे हैं।

वचन के प्रसंग में हम यह बतला चुके हैं कि कुछ अवसरों पर वचन का ठीक ध्यान न रखने के कारण मुहावरे तक अशुद्ध हो जाते हैं। यही बात लिंग के सम्बन्ध में भी है। यदि किसी मुहावरे में हम लिंग सम्बन्धी कोई सामान्य-सी भी भूल कर जायँ, तो या तो उसका अर्थ ही बदल जायगा या वह मुहावरा ही अशुद्ध हो जायगा। जैसे, असल मुहावरा है—'नाक में दम होना।' पर इसका प्रयोग सदा इसी रूप में होता है—'हमारा नाक में दम है (या हो गया है)।' अथवा 'उसका नाक में दम है (या हो गया है)।' अब यदि इसके बदले हम कहें—'हमारी नाक में दम हो गया।' या 'उसकी नाक में दम हो गया।' तो लोग प्रसंग से भले ही इसका अर्थ समझ लें, पर वास्तविक या व्यवहार की दृष्टि से इसका कुछ भी अर्थ न होगा; और इसी लिए मुहावरे की दृष्टि से भी इस प्रकार के प्रयोग अशुद्ध होंगे।

१४

विभक्तियाँ

हम कहते हैं—'राम ने कृष्ण की पुस्तक चोरी से गोपाल को दे दी। बात खुलने पर तीनों आपस में लड़ गये।' इन वाक्यों में जो 'ने', 'की', 'से', 'को', 'पर', और 'में' हैं, वही विभक्तियाँ हैं। भाषा में इनका काम है—एक शब्द का दूसरे के साथ सम्बन्ध सूचित करना। यदि ऊपर के वाक्यों में से ये विभक्तियाँ निकाल दी जायँ तो शब्दों का एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं जाना जा सकता। अर्थात् यदि वाक्यों में विभक्तियाँ न हों, तो उनका कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। विभक्तियाँ न रहने पर वाक्य का रूप रह जायगा- 'राम कृष्ण पुस्तक चोरी गोपाल दे दी।' यदि कुछ खींच-तानकर हम इसका अर्थ लगाना चाहें तो इसके कई अर्थ हो सकेंगे। इसका यह अर्थ हो सकेगा कि राम को कृष्ण की पुस्तक चोरी कर के गोपाल ने दे दी; या इसके सिवा इसी तरह का कुछ और अर्थ भी हो सकता है। वास्तविक अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभक्तियों की आवश्यकता होती है।

ये तो हैं विभक्तियों के स्वतन्त्र रूप; पर इनके सिवा इनका एक दूसरा रूप भी है। वह रूप है कुछ सर्वनामों के साथ मिला हुआ।

जैसे—'हमारा' वास्तव में 'हम का' का :वाचक है, 'तुम्हारा' 'तुम का' का, 'तुम्हें' 'तुमको' का और 'उसे' 'उसको' का। हमारा, तुम्हारा, तुम्हें और उसे आदि में पहले ही प्रत्यय के रूप में विभक्तियाँ लगी हुई हैं। संज्ञाओं आदि में जो विभक्तियाँ लगती हैं, वे स्वतन्त्र रूप-वाली होती हैं।

विभक्तियों को कुछ लोग प्रत्यय मानते हैं और कुछ लोग अव्यय कहते हैं। पर ये सब ऐसी पेचीली बातें हैं, जिनसे आरम्भिक विद्यार्थियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके लिए यही जान लेना बहुत है कि अधिकतर लोग इन्हें प्रत्यय मानते हैं। और प्रत्ययों में भी विभक्तियाँ 'चरम प्रत्यय' कहलाती हैं। अर्थात् किसी शब्द में विभक्ति लग जाने के बाद फिर और प्रत्यय आदि उसमें नहीं लगते। इसी लिए 'गुरु जी तक का यह विचार है।' कहना ही ठीक है; 'गुरु जी का तक यह विचार है।' कहना ठीक नहीं है। इसी लिए 'उसकेवाली पुस्तक' या 'हमारावाला मकान' भी कहना ठीक नहीं है; क्योंकि 'उसकेवाली' में तो 'के' स्वतन्त्र रूप में लगा है; इसलिए उसके बाद 'वाली' नहीं होना चाहिए; और 'हमारा' में पहले से प्रत्यय के रूप में एक विभक्ति लगी है, इसलिए उसके बाद 'वाली' नहीं होना चाहिए। और इसी लिए 'उसके ही कारण' कहने से 'उसी के कारण' कहना अधिक अच्छा है।

फिर भी कुछ अवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें विभक्ति के बाद भले ही कोई और प्रत्यय न लगे, पर एकाध स्वतन्त्र विभक्ति लग ही जाती है। जैसे, हम कहते हैं—'इनमें से दो पुस्तकें तुम ले लो।' 'चौकी पर से पुस्तकें हटा लो।' और 'उनमें का एक कपड़ा खो गया।' इन वाक्यों में 'में' और 'पर' के बाद भी 'से' और 'का' विभक्तियाँ आई हैं। पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि ये विभक्तियाँ ही हैं, 'हमारा' या 'उसे' में लगे हुए या 'वाला' आदि प्रत्ययों के समान प्रत्यय नहीं हैं।

विभक्तियों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक-दो बातें और हैं। पहली बात तो यह है कि इनमें से 'का' को छोड़कर और किसी विभक्ति का रूप नहीं बदलता। 'में', 'ने', 'से', 'को', और 'पर' सदा एक ही रूप में रहते हैं। केवल 'का' का स्त्री-लिंग रूप 'की' होता है और बहुवचन रूप 'के' होता है; और कुछ अवस्थाओं में एक-वचन में भी 'के' रूप हो जाता है। इनमें से 'पर' के सम्बन्ध में एक विलक्षण बात यह भी है कि इसका विरोधी भाव सूचित करनेवाला 'तले' शब्द विभक्ति नहीं है। यदि हम कहें—'चिड़िया पेड़ पर बैठी है।' तो इसमें का 'पर' तो विभक्ति है; पर यदि हम कहें—'चिड़िया पेड़ तले बैठी है।' तो इसमें का 'तले' विभक्ति नहीं है।('पर' भी केवल 'ऊपर' के अर्थ में विभक्ति है, 'पंख' के अर्थ में वह संज्ञा और 'परन्तु' या 'लेकिन' के अर्थ में अव्यय है। दूसरी बात यह है कि विभक्तियाँ कारक-चिह्न कहलाती हैं। व्याकरण में कारक का प्रसंग आप पढ़ ही चुके होंगे। उनका विवेचन इस पुस्तक के बाहर की बात है। ये सब विभक्तियाँ अलग-अलग कारकों के चिह्न हैं और इनमें से कुछ विभक्तियाँ एक ही नहीं, बल्कि दो-दो कारकों के चिह्न हैं; जैसे 'का' कर्मकारक का भी चिह्न है और सम्प्रदान कारक का भी। इसी प्रकार 'से' करण कारक का भी चिह्न है और अपादान कारक का भी। कारकों में एक सम्बोधन कारक भी है; और उसके चिह्न 'हे', 'हो', 'अरे', 'अजी' आदि हैं। पर इनकी गिनती विभक्तियों में नहीं होती, अव्ययों में होती है। और कुछ लोग तो सम्बोधन कारक को अलग कारक भी नहीं मानते; उसे कर्त्ता कारक के ही अन्तर्गत रखते हैं।

अलग-अलग विभक्तियाँ अलग अलग अवसरों के लिए होती हैं; और उनसे अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। किसी 'से' प्रेम किया जाता है और किसी 'पर' प्रेम प्रकट किया जाता है। दवा की सूई

या इंजेक्शन शरीर 'में' लगाया जाता है और मरहम शरीर 'पर' लगाया जाता है। जब हमें किसी घटना के बाद का हाल जानना या कहना होता है, तब हम कहते हैं—'इसके आगे (या बाद) का हाल बतलाओ (या सुनो)।' और जब हमें किसी के सम्बन्ध की सीमा बतलानी होती है, तब हम कहते हैं—'इससे आगे मत बढ़ना।' 'वह उन लोगों से मिल गया है।' और 'वह उन लोगों में मिल गया है।' में बहुत अन्तर है। इनमें से पहले वाक्य का अर्थ यह है कि वह आकर उन लोगों से भेंट कर गया है; और दूसरे वाक्य का अर्थ यह है कि वह उन लोगों के दल या पक्ष में हो गया है। इसी प्रकार के अन्तर 'किसी के नाम का', 'किसी के नाम पर' और 'किसी के नाम से' में भी हैं। हम अपने लाभ के लिए किसी के नाम 'का' उपयोग करते हैं; और अपने नाम 'की' अँगूठी (या मोहर) बनवाते या खुदवाते हैं। हम किसी के नाम 'पर' कोई मन्दिर या मकान बनवाते हैं; और किसी के नाम 'से' किसी दुकान से कोई चीज जाकर या उधार लाते हैं। इसी प्रकार के अन्तर वाक्य में विभक्ति होने और न होने से भी होते हैं। हम कहते हैं—'इस बोरे में दो मन गेहूँ है।' और 'गेहूँ का यह बोरा दो मन का है।' 'शत्रुओं ने नगर पर चार टन गोले बरसाये।' का अर्थ यह है कि नगर पर जितने गोले बरसे थे, वे सब तौल में चार टन थे। और 'शत्रुओं ने नगर पर चार टन के गोले बरसाये।' का अर्थ यह है कि नगर पर जो गोले बरसे थे, उनमें से हर एक तौल में चार टन था। जब हमें साधारणतः बीते हुए दिनों की कोई बात कहनी होती है, तब हम कहते हैं—'उन दिनों हम लोग एक ही मकान में रहा करते थे।' पर जब हमें उन दिनों की सीमा बाँधनी पड़ती है, तब हम कहते हैं—'उन दिनों में तो यह बात नहीं हुई, बाद में हुई हो तो हम नहीं जानते।' इसी प्रकार कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी होती हैं,

जिनमें विभक्तियों का प्रयोग बहुत आवश्यक होता है और उनके बिना वाक्य भद्दे और अशुद्ध हो जाते हैं। जैसे—'कुछ समझ नहीं आता।' और 'आप दोपहर किसी समय आवें।' सरीखे प्रयोग भद्दे भी होते हैं और अशुद्ध भी माने जाते हैं। इनके बदले कहना चाहिए—'कुछ समझ में नहीं आता।' और 'आप दोपहर को किसी समय आवें।' तात्पर्य यह कि हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहाँ किस विभक्ति का प्रयोग करना चाहिए, कहाँ विभक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और कहाँ विभक्ति का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें कुछ विभक्तियों का प्रयोग न करना ही अच्छा माना जाता है। हम कहते हैं—'नौकर के हाथ पुस्तक भेज दो।' और 'इतना परिश्रम करने पर भी हमारे हाथ कुछ न आया।' यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि वास्तव में 'नौकर के हाथ से पुस्तक को भेज दो।' और '........हमारे हाथ में कुछ भी न आया।' कहना ही ठीक है। फिर भी हम ऐसे अवसरों पर 'से', 'को' और 'में' का प्रयोग नहीं करते। कारण यही है कि व्यवहार में आते आते ऐसे अवसरों की विभक्तियों का लोप हो गया है। हम कभी यह नहीं कहते—'उसने पत्थर को फेंका।' या 'उसने मकान को बनवाया।' या 'उसने पुस्तक को भेजा।' ऐसे प्रयोग व्याकरण के विचार से अशुद्ध न होने पर भी बहुत भद्दे माने जाते हैं और इसी लिए अच्छे लोग ऐसे प्रयोग नहीं करते। 'वह पत्र लिखने को बैठा।' 'हम बड़े बड़े कष्टों को सहते हैं।' 'हमने अपने स्थान को न छोड़ा।' और 'वे अनुचित उपायों को काम में लाते हैं।' सरीखे प्रयोग बहुत भद्दे होते हैं। इनके बदले हमें कहना चाहिए—'वह पत्र लिखने बैठा।,' 'हम बड़े बड़े कष्ट सहते हैं।' 'हमने अपना स्थान न छोड़ा।' और 'वे अनुचित उपाय काम में

लाते हैं।' या 'वे अनुचित उपायों का प्रयोग करते हैं।' कुछ ऐसे ही कारणों से 'उसको' 'हमको' और 'तुमको' आदि के बदले 'उसे' 'हमें' और 'तुम्हें' आदि रूप ही अधिक अच्छे समझे जाते हैं।

विभक्तियों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक और बात यह है कि जब किसी आकारान्त पुलिंग शब्द के उपरान्त कोई विभक्ति आती है, तब उस शब्द के अन्त का 'ा' बदलकर 'े' हो जाता है। हम कभी यह नहीं कहते—'हम सवेरा से यहाँ बैठे हैं।' सदा 'सवेरे से' कहते हैं। पर 'हम संध्ये से' इसलिए नहीं कहते कि 'संध्या' स्त्री-लिंग है। इसी प्रकार 'दरभंगा में हड़ताल' और 'लाल किला में उपद्रव' सरीखे प्रयोग भी अशुद्ध हैं। होना चाहिए—'दरभंगे में हड़ताल' और 'लाल किले में उपद्रव।'

इसी प्रकार के कुछ और ऐसे अवसर हैं, जिनमें विभक्तियों से पहले आनेवाली संज्ञाओं आदि के रूप कुछ बदल जाते हैं। 'वहाँ पाँच स्त्रियाँ और एक बालक की मृत्यु हो गई।' कहना ठीक नहीं है। होना चाहिए—'वहाँ पाँच स्त्रियों और एक बालक की मृत्यु हो गई।' इसी प्रकार—'उन्हें चार घोड़े और एक बैल का दाम मिला' की जगह 'उन्हें चार घोड़ों और एक बैल का दाम मिला' होना चाहिए। नहीं तो वाक्य का अर्थ हो जायगा—उन्हें चार घोड़ मिले और एक बैल का दाम मिला।

वाक्यों की बनावट पर और भी कई तरह से विभक्तियों का प्रभाव पड़ता है। कभी कभी तो लोग ऐसे अवसरों पर विभक्तियों का प्रयोग कर जाते हैं, जहाँ उनकी कुछ भी आवश्यकता नहीं होती। और कभी कभी ऐसे अवसरों पर भी विभक्तियों का प्रयोग नहीं करते, जहाँ उनकी आवश्यकता होती है। और इन कारणों से वाक्य प्रायः अशुद्ध और भद्दे हो जाते हैं। पहले हम कुछ ऐसे प्रयोग बतलाते हैं, जिनमें लोग व्यर्थ विभक्तियाँ लगाते हैं।

हम पहले बतला चुके हैं कि कुछ अवस्थाओं में विभक्तियों का वास्तव में तो प्रयोग होना चाहिए, पर व्यवहार में प्रायः उन अवसरों पर विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता। अर्थात् कुछ अवसरों के लिए विभक्तियों का लोप हो गया है। उन्हीं से मिलते-जुलते कुछ और ऐसे अवसर हैं, जिनमें विभक्तियों के प्रयोग से वाक्य में भद्दापन आ जाता है। ऐसे अवसरों पर यदि वाक्य का रूप जरा सा बदल दिया जाय, तो व्यर्थ की विभक्ति निकल सकती है और वाक्य का भद्दापन दूर हो सकता है। 'हमको बहुत सी बातों को सीखना पड़ता है।' कहने से 'हमें बहुत सी बातें सीखनी पड़ती हैं।' कहना अधिक हलका और सुन्दर है। 'इस कार्य को करते हुए हमें बहुत दिन हो गये।' की जगह कहना चाहिए—'यह कार्य करते हुए हमें बहुत दिन हो गये।'

कुछ लोग एक ही वाक्य में किसी एक विभक्ति का कई कई बार प्रयोग कर जाते हैं, जिससे वाक्य भद्दा हो जाता है। जैसे—'मातृभूमि को स्वतन्त्र करने को चलो।' में दूसरा 'को' बिल्कुल व्यर्थ आया है। इसी प्रकार—'उनको उस पुस्तक को भेजने को लिखा गया था।' और 'मुझको इस बात को बतलाने को कहा गया था।' में तीन तीन बार 'को' आया है। ऐसे अवसरों पर ध्यान रखने की पहली बात तो यह है कि 'हमको', 'इसको' और 'उनको' आदि की जगह यदि हम 'हमें', 'इसे' और 'उन्हें' आदि का प्रयोग करें तो वाक्यों में से एक 'को' अनायास निकल जाता है। दूसरी बात यह है कि 'उस पुस्तक को भेजने को लिखा गया था' और 'इस बात को बतलाने को कहा गया था' की जगह यदि हम कहें—'वह पुस्तक भेजने को लिखा गया था।' और 'यह बात बतलाने को कहा गया था।' तो वाक्यों में से एक और व्यर्थ का 'को' निकल जाता है। अर्थात् हम कह सकते हैं—'उन्हें वह पुस्तक भेजने को लिखा गया था।'

और 'मुझे यह बात बतलाने को कहा गया था।' इस प्रकार वाक्यों में से दो दो 'को' निकल जाते हैं और वे हलके तथा सुन्दर हो जाते हैं। 'उन लोगों को सेना को हटाने को कहा गया।' कितना भद्दा जान पड़ता है। और 'उन लोगों से सेना हटाने के लिए कहा गया।' कितना सुन्दर है !

अब ऐसे प्रयोग लीजिए, जिनमें लोग आवश्यकता होने पर भी कभी कभी विभक्तियों का प्रयोग नहीं करते। ऐसी भूलें प्रायः दो कारणों से होती हैं। एक तो कुछ प्रान्तीय बोलियों के प्रभाव के कारणः और दूसरे, कुछ विशेष प्रकार के वाक्यों की बनावट के कारण। 'आप अवश्य सुने होंगे।' और 'वे हमसे कहे थे।' सरीखे प्रयोग बिलकुल प्रान्तीय हैं और अशुद्ध समझे जाते हैं। होना चाहिए—'आपने अवश्य सुना होगा।' और 'उन्होंने हमसे कहा था।' वाक्यों की बनावट के कारण लोगों से विभक्ति सम्बन्धी जो और भूलें होती हैं, उनके उदाहरण हैं—'वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और कहा।' या 'वह दौड़ी हुई डाक्टर के पास गई और दवा माँगी।' होना चाहिए–'वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और उसने कहा।' 'और वह दौड़ी हुई डाक्टर के पास गई और उसने दवा माँगी।' यह ठीक है कि इस प्रकार की भूलों को हम कोरी विभक्ति की भूलें नहीं कह सकते; पर साथ ही हम इन्हें कोरी सर्वनामों की भूलें भी नहीं कह सकते। वास्तव में ये सर्वनामों के विभक्ति-युक्त रूपों से सम्बन्ध रखनेवाली भूलें हैं, और इसी लिए यहाँ इनका उल्लेख किया गया है।

प्रायः लोग जल्दी में लिख या बोल जाते हैं—'माता ने हँस दिया।' और 'उसने वहाँ से चल दिया।' आदि। इस प्रकार की भूलें उन्हीं लोगों से होती हैं, जो यह नहीं जानते कि 'ने' का प्रयोग कहाँ होना चाहिए और कहाँ नहीं होना चाहिए। 'ने' का प्रयोग सदा भूतकाल में और केवल सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है ;

वर्त्तमान या भविष्य काल में अथवा अकर्मक क्रियाओं के साथ नहीं होता। ऊपर के उदाहरणों में काल तो भूत अवश्य है, पर क्रियाएँ सकर्मक नहीं बल्कि अकर्मक हैं, और इसी लिए वाक्य अशुद्ध हैं। होना चाहिए—'माता हँस पड़ी।' और 'वह वहाँ से चल दिया।'

प्रायः लोग केवल असावधानता के कारण भी विभक्ति-सम्बन्धी बड़ी-बड़ी भूलें कर जाते हैं; और कभी-कभी तो ऐसी भूलें कर जाते हैं, जिनके कारण वाक्य के अर्थ या भाव में बहुत अन्तर पड़ जाता या पड़ सकता है। जैसे—'वे हर साल समुद्र में सैर करने जाते थे।' और 'वह घड़ा लेकर नदी में पानी भरने गई।' 'समुद्र में सैर करने जाते थे।' का तो यही अर्थ होगा कि वे समुद्र के जल के भीतरी भाग में सैर करने जाते थे। पर है यह बात वास्तविकता से बहुत दूर। इसलिए वाक्य का रूप होना चाहिए '...... समुद्र की सैर करने जाते थे।' इसी प्रकार 'नदी में पानी भरने जाती थी।' का अर्थ यह होगा कि वह पानी किसी दूसरी जगह से लाकर 'नदी में' भरती थी। इसलिए होना चाहिए—'वह घड़ा लेकर नदी का (या अधिक से अधिक 'से' या 'पर') पानी भरने जाती थी।' 'लोग इस फूल को माला बनाकर पहनते हैं।' का तो सीधा-सादा अर्थ यही होगा कि लोग स्वयं उस फूल को माला का रूप देते हैं। इसलिए होना चाहिए—'लोग इसके फूलों की (या इन फूलों की) माला बनाकर पहनते हैं।'

१५

निबन्ध

साहित्य या जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले किसी विषय पर अपने जो विचार, एक साधारण लेख के रूप में, प्रकट किये जाते हैं, उन्हें 'निबन्ध' कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सब लोगों या बहुत से लोगों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी विषय पर सबके समझने योग्य जो बातें अपने अनुभव या जानकारी से संक्षेप में लिखी जाती हैं, उन्हीं का नाम 'निबन्ध' है। निबन्ध किसी ऊँचे दरजे के विषय पर भी हो सकते हैं और बहुत बड़े भी हो सकते हैं। पर साधारणतः विद्यार्थियों का सम्बन्ध उसी प्रकार के निबन्धों से होता है, जिनका जिक्र हमने पहले किया है।

विद्यार्थियों को पाठशालाओं में पढ़ने के समय भी और परीक्षा के समय भी अपने मन से किसी विषय पर कुछ लिखने लिए कहा जाता है। उन्हें कोई एक-दो विषय बतला दिये जाते हैं और उन्हीं विषयों पर उन्हें अपने विचार लेख के रूप में लिखने पड़ते हैं। यह विषय किसी मेले, नगर या त्योहार आदि का वर्णन भी हो सकता है, किसी यात्रा का विवरण भी हो सकता है, किसी पशु-पक्षी या वस्तु का वर्णन भी हो सकता है और किसी बात की भलाई-बुराई का विवेचन भी हो सकता है। मतलब

यह कि बालकों और विद्यार्थियों के लिखने के लिए निबन्ध के विषय सैंकड़ों और हजारों हो सकते हैं।

पाठशाला में पढ़ने के समय भी और परीक्षा देने के समय भी विद्यार्थियों के लिए निबन्ध लिखने का समय थोड़ा ही होता है। इसलिए उनसे ऐसे ही विषयों पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है, जिनसे उनका अच्छी तरह परिचय होता है। कभी-कभी ऐसे दो-चार विषय भी बतला दिये जाते हैं और उनमें से किसी एक विषय पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है। विद्यार्थियों को उतने ही समय में सब बातें सोचनी भी पड़ती हैं और लिखनी भी। पर हाँ, जब कभी विद्यार्थी अपने मन से किसी विषय पर निबन्ध लिखना चाहता है और उसके लिए समय का कोई बन्धन नहीं होता, तब उसे अपने मित्रों या बड़ों से पूछने या ग्रन्थों आदि से सहायता लेने का समय भी मिल जाता है। और नहीं तो साधारणतः निबन्ध बहुत ही थोड़े समय में लिखना पड़ता है।

चाहे पाठशाला या परीक्षा-गृह में बैठकर थोड़े समय में निबन्ध लिखना पड़े और चाहे घर पर बैठकर मनमाने समय में, पर दोनों अवस्थाओं में पहले उस विषय पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए, जिस पर निबन्ध लिखना हो। उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मालूम हों, वे सब अपने सामने रखकर उनका एक अच्छा सा सिलसिला बैठा लेना चाहिए। इससे निबन्ध सुन्दर भी हो जाता है और उसे लिखने में समय भी कम लगता है। यदि ऐसा न किया जायगा तो बार-बार उसमें काट-छाँट करनी पड़ेगी और वह भद्दा हो जायगा। समय जो अधिक लगेगा, वह अलग।

निबन्ध लिखने के लिए सबसे पहली आवश्यकता ज्ञान की होती है। यह ज्ञान आस-पास की सब चीजों को ध्यान से देखने, सब तरह के लोगों से बात-चीत करने और सब तरह की पुस्तकें पढ़ने

से प्राप्त होता है। कभी कभी कुछ विद्यार्थी किसी पुस्तक के दो-चार पन्नों में पढ़ी हुई बातें ही जैसे-तैसे लिखकर अपना निबन्ध तैयार कर लेते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। इससे निबन्ध तो खराब होता ही है, आगे चलकर अच्छे निबन्ध लिखने का अभ्यास भी नहीं होने पाता। इसलिए निबन्ध लिखने में सब तरह के, सब तरफ से और सब प्रकार से प्राप्त किये हुए ज्ञान का सहारा लेना चाहिए। यह ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब सब तरह की पढ़ी और सुनी हुई बात अच्छी तरह मन में समझ ली जायँ—सब प्रकार के विचार अपने मन में इकट्ठे कर लिये जायँ। और तब दूसरों से सुने और किताब में पढ़े हुए वे विचार स्वयं अपने शब्दों में और अपने ढंग से लिखे जाने चाहिए। तभी निबन्ध अच्छा और सुन्दर होता है।

जो अच्छी बातें सामने आवें, वे सब विषयों के अनुसार अलग अलग करके लिखते चलना चाहिए। साधारण बातें तो अपनी ही भाषा में लिखी जानी चाहिएँ, पर अधिक महत्त्व की बातें अपने मूल रूप में लिखी जानी चाहिएँ और उनके अन्त में यह भी लिख लेना चाहिए कि ये बातें किस पुस्तक की अथवा किस विद्वान् की हैं। अवसर पड़ने पर इस प्रकार की बातें उद्धरण के रूप में अपना पक्ष या मत ठीक सिद्ध करने के लिए दी जा सकती हैं। इस तरह की बातें लिखते चलने से कई लाभ होते हैं। पहले तो लिखने का अभ्यास बढ़ता है। दूसरे, एक बार लिखी जाने पर वे बातें अधिक समय तक याद रहती हैं। तीसरे, इस तरह की बातें ढूँढने का शौक पैदा होता है। और चौथे, काम पड़ने पर ऐसी बातों से निबन्ध आदि लिखने में बहुत सहायता मिलती है।

निबन्ध लिखने से पहले उसके विषय की मुख्य मुख्य बातें अलग अलग विभागों में बाँट लेनी चाहिएँ और उनके शीर्षक बना

लेने चाहिएँ। इससे यह लाभ होता है कि आवश्यक बातें छूटने नहीं पातीं, और यदि ध्यान रक्खा जाय तो व्यर्थ की बातें आने भी नहीं पातीं। इससे एक और सहायता मिलती है। वह यह कि विषय के सब अंगों या विभागों पर ठीक तरह से दृष्टि रहती है। यह नहीं होता कि किसी अंग या विभाग पर तो बहुत सी बातें लिखी जायँ और किसी अंग या विभाग पर बहुत ही थोड़ी। उन अंगों या विषयों की उपयोगिता और आवश्यकता पर ठीक और पूरा ध्यान रहता है; और सहज में यह समझ में आ जाता है कि किस अंग या विभाग पर कितना लिखना चाहिए। यह नहीं होने पाता कि अनावश्यक अंग या विषय पर तो बहुत सा लिखा जाय और आवश्यक अंग या विषय पर कम। सब बातें ठीक क्रम से और जितनी चाहिए, उतनी आ जाती हैं। इस प्रकार निबन्ध हर तरह से सुन्दर, सुडौल और एक-रस हो जाता है।

जिस विषय पर निबन्ध लिखना हो, उसके सम्बन्ध की सब बातें पहले अच्छी तरह अपने मन में समझ और बैठा लेनी चाहिएँ। और तब वही बातें लिखनी चाहिएँ जो उस विषय से सम्बन्ध रखती हों। यदि किसी मेले का वर्णन करने को कहा जाय तो निबन्ध में मेले के सम्बन्ध की ही मुख्य मुख्य बातें होनी चाहिएँ। मेले में जाने या वहाँ से लौटने के समय रास्ते में जो बातें हुई हों, या तो उनका वर्णन होना ही नहीं चाहिए, या बहुत ही संक्षेप में होना चाहिए। या मेले में अगर कोई लड़ाई-झगड़ा हो गया हो तो सारा निबन्ध उस झगड़े के वर्णन से ही भरा हुआ नहीं होना चाहिए। मुख्य ध्यान अपने विषय पर ही रहना चाहिए, इधर-उधर की बातों पर नहीं। यदि इधर-उधर की कुछ बातें लानी ही पड़ें, तो वे बहुत थोड़ी होनी चाहिएँ। हर काम या चीज के तीन मुख्य अंग होते हैं, आरम्भ, मध्य और अन्त। निबन्ध में भी ये तीनों बातें होती हैं और इनका ठीक ठीक

ध्यान रखना चाहिए। निबन्ध के आरम्भ में वे बातें होनी चाहिए जिनसे पढ़नेवाले को उस विषय का साधारण परिचय हो। साथ ही उसे आरम्भ में ही यह भी मालूम हो जाना चाहिए कि निबन्ध लिखनेवाले का उद्देश्य क्या है। उस विषय से सम्बन्ध रखने-वाली जितनी बातें मन में हों, वे सब आरम्भ में ही एक दम से और एक साथ नहीं रख दी जानी चाहिएँ। ऐसी महत्त्व की बातें मध्य के लिए बचा रखनी चाहिएँ। यदि ऐसा न किया जायगा तो मध्य और अन्त दोनों भद्दे हो जायँगे।

निबन्ध का मध्य भाग ही सबसे अधिक महत्त्व का होता है और मुख्य मुख्य बातें उसी में होनी चाहिएँ। अच्छे अच्छे तथ्य, उदाहरण और विचार निबन्ध के मध्य में ही रहने चाहिएँ। ये सब बातें, जहाँ तक हो सके, मनोरंजक रूप में और सहज भाषा में लिखी जानी चाहिएँ। न तो अपने विषय से दूर जाना चाहिए और न ऐसी बातें निबन्ध में भरनी चाहिएँ, जिनसे पढ़नेवाले का जी ऊब जाय। एक ही तरह की बहुत सी बातें एक साथ कह जाने के बदले कई तरह की थोड़ी थोड़ी बातें कहना कहीं अच्छा होता है। यदि निबन्ध का विषय इतिहास, भूगोल या विज्ञान आदि से सम्बन्ध रखता हो तो उसमें अंकों, तिथियों आदि की भरमार नहीं होनी चाहिए। सदा इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि निबन्ध कुछ खास तरह के आदमियों के लिए नहीं, बल्कि सभी तरह के आदमियों के लिए होते हैं।

यदि निबन्ध का आरम्भ ठीक तरह से हो और उसके मध्य का अच्छी तरह निर्वाह हो जाय तो उसका अन्त करना विशेष कठिन नहीं होता। अन्त में तो सब बातों के सारांश या निचोड़ के रूप में दो-चार बातें कह देने से ही काम चल जाता है। कभी कभी तो एक-दो वाक्यों में ही निबन्ध का अच्छी तरह अन्त किया जा सकता है। पर हाँ, वह अन्त ऐसा होना चाहिए जो देखने में बिलकुल स्वाभाविक

ज्ञान पड़े, जबरदस्ती ऊपर से लादा हुआ न मालूम हो। अन्त ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे यह जान पड़े कि निबन्ध बहुत जल्दी में पूरा किया गया है या अब लिखनेवाले के मन में इस विषय के विचारों का टोटा हो गया है या वह किसी तरह की लाचारी की हालत में पड़कर अन्त कर रहा है। बल्कि ऐसा जान पड़ना चाहिए कि लिखनेवाले ने सब बातें ठीक तरह से कह दी हैं और अब वह स्वयं ही इसका अन्त कर रहा है।

कुछ लोग तो थोड़ा थोड़ा लिखते हैं औ: बीच बीच में उसे दोहराते भी चलते हैं; और कुछ लोग सारा निबन्ध लिख चुकने के बाद उसे आदि से अन्त तक देखकर एक साथ दोहराते हैं। दोनों ही रास्ते ठीक हो सकते हैं। इनमें से कोई एक रास्ता अच्छा और दूसरा खराब नहीं कहा जा सकता। जो कुछ लिखा जाय, उसे दोहराने की आवश्यकता अवश्य होती है; इसलिए लिखा हुआ निबन्ध एक बार दोहराना अवश्य चाहिए। यदि निबन्ध में कहीं कोई कोर-कसर रह गई हो तो वह दोहराने पर दूर होती है; और निबन्ध दोहराया भी इसी लिए जाता है। पर यह दोहराने का काम ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसमें जगह जगह काट-छाँट हो और इतनी काट-छाँट हो कि फिर से लिखना पड़े। प्रायः परीक्षाओं के अवसर पर विद्यार्थियों के पास इतना समय नहीं होता कि निबन्ध एक बार लिखने के बाद फिर से लिखा जा सके। इसलिए पहले लिखते समय ही खूब सोच-समझकर कलम चलानी चाहिए, जिसमें बाद में ऐसी नौबत न आवे। बाद में तो एक बार आदि से अन्त तक पढ़ जाने और आवश्यकता हो तो कहीं कहीं कुछ घटाने-बढ़ाने से ही काम चल जाय।

निबन्धों के आदि और अन्त महत्त्व के तो अवश्य होते हैं, पर उनके सम्बन्ध में कोई विशेष बात बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

निबन्धों का सबसे अधिक महत्त्व का अंश बीच का ही होता है, क्योंकि विषय का सारा विवेचन उसी में रहता है। यह विवेचन कई प्रकार का हो सकता है। किसी निबन्ध में किसी विषय का वर्णन मात्र हो सकता है; किसी में किसी घटना आदि के सम्बन्ध का कुछ कथन हो सकता है; किसी में किसी विषय का विवेचन हो सकता है; और किसी में तर्क के आधार पर किसी मत की पुष्टि या सिद्धि हो सकती है। इस दृष्टि से निबन्ध साधारणतः चार प्रकार के हो सकते हैं—वर्णनक, कथनक, विवेचक और तर्कक। यहाँ हम इन चारों प्रकारों के निबन्धों के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें बतलाना चाहते हैं।

हम आँखों से जो कुछ देखते या कानों से जो कुछ सुनते हैं, वह जब हम अपने शब्दों में किसी से कहते हैं, तब उसे वर्णन करना कहते हैं। इस प्रकार की बातें जिन निबन्धों में हों, वही वर्णनक कहलाते हैं। जैसे गौ या घोड़े का वर्णन अथवा रेल-गाड़ी या बरात का वर्णन जिस निबन्ध में हो, वह वर्णनक निबन्ध कहलावेगा। पर वर्णन किसी नगर का भी हो सकता है और किसी ऐसे भूमिखंड का भी हो सकता है, जिसमें कुछ मैदान भी हों, कुछ पहाड़ भी हों, एक-दो नदियाँ या नाले भी हों, कुछ जंगल भी हों और कुछ खेत या बस्तियाँ भी हों। ऐसी चीजों का वर्णन, जिनमें कई तरह की दूसरी चीजें भी मिली हों, बहुत कठिन होता है। ऐसी अवस्था में सबसे पहले उस सारी चीज के स्वरूप का ऐसा वर्णन करना चाहिए, जिससे पढ़नेवालों को उसके आकार-प्रकार आदि का ठीक ज्ञान हो सके। फिर उसके मुख्य मुख्य अंगों का अलग अलग वर्णन होना चाहिए। यदि उस वर्णन में सवेरे, सन्ध्या या चाँदनी रात के वर्णन का अथवा किसी विशेष ऋतु की शोभा का वर्णन भी मिलाया जा सके तो और भी अच्छा है। यदि उसके रूप के साथ साथ रंग का भी और उसमें होनेवाले पदार्थों या जीवों का भी वर्णन हो सके तो निबन्ध की सुन्दरता और

भी बढ़ जाती है। यदि उसे देखने पर मन में उत्पन्न होनेवाले भावों या विचारों का भी कुछ उल्लेख हो सके, तो फिर कहना ही क्या है!

यदि किसी व्यक्ति या जाति का वर्णन करना हो, तो उसके रूप, रंग, शरीर की गठन, आचार-विचार, स्वभाव, रीति-रवाज और रहन-सहन आदि का वर्णन करना चाहिए। किसी नगर का वर्णन करना हो तो उसके बाज़ारों, गलियों, रोज़गारों, त्योहारों और मेलों का कुछ जिक्र करना चाहिए। किसी महल का वर्णन करना हो तो उसके कमरों, आँगनों आदि के सिवा उसमें की चित्रकारी या चारो ओर लगे हुए, बाग-बगीचे आदि का भी वर्णन करना चाहिए; और यदि वह किसी नदी या ताल के किनारे, किसी पहाड़ी के नीचे या किसी टेकरी के ऊपर हो तो उसका भी कुछ वर्णन करना चाहिए। मतलब यह कि जिस चीज का वर्णन करना हो, उसके अंगों का तो जिक्र होना ही चाहिए, आस-पास की जिन चीजों से उसकी शोभा बढ़ती हो या जिन चीजों की उससे शोभा बढ़ती हो, उसका भी कुछ जिक्र होना चाहिए।

जब हम कुछ घटनाओं का एक सिलसिले से जिक्र करते हैं, तब मानो हम किसी विषय का कथन मात्र करते हैं। जिन निबन्धों में इस तरह की बातें होती हैं, वे कथनक कहे जा सकते हैं। ऐसे कथन में मुख्यतः इस बात पर ध्यान रखना पड़ता है कि कौन सी घटना कब हुई। जो घटना पहले हुई हो, उसका कथन पहले, जो बीच में हुई हो, उसका बीच में और जो अन्त में हुई हो, उसका अन्त में कथन होना चाहिए। उदाहरण के लिए बरात के कथन में ऐसा नहीं होना चाहिए कि लड़कीवाले के घर पहुँचने का वर्णन तो पहले हो, रास्ते का वर्णन अन्त में हो और लड़केवाले के घर से चलने का वर्णन बीच में हो। या अदालत में अपराधी को मिलनेवाली सजा का वर्णन पहले हो, अदालत में उसके लाये जाने का वर्णन बीच में हो और

उसके किये हुए अपराध या पकड़े जाने का वर्णन अन्त में हो।

कभी कभी ऐसी बातों का कथन करना पड़ता है, जिनमें दो घट-नाएँ एक में मिली हुई होती हैं। ऐसी अवस्था में दोनों घटनाओं की बातें, जहाँ तक हो सके, अलग-अलग बतलाई जानी चाहिएँ ; और दोनों घटनाओं का मेल ऐसी सुन्दरता से दिखलाना चाहिए कि पढ़नेवाले को कहीं से खटक न मालूम हो। जिन कारणों से अथवा जिन अवस्थाओं में वे घटनाएँ हुई हों, उनका भी कुछ उल्लेख होना चाहिए। यदि बीच में कोई ऐसी बात-चीत आ सके, जिससे उन घटनाओं का रहस्य सहज में समझा जा सके, तो और भी अच्छा है। ऐसा जान पड़ना चाहिए कि सारा कथन ऐसे व्यक्ति का है, जो दूर से खड़ा होकर दर्शक की तरह देख रहा है और सब बातें अच्छी तरह जानता है। यदि किसी सुनी या पढ़ी हुई घटना का वर्णन करना हो तो वह भी ऐसा होना चाहिए कि मानो सब बातें अपनी आँखों से देखी हुई हैं।

विवेचन का सीधा-सादा और पहला अर्थ है—किसी बात की छान-बीन या जाँच-पड़ताल करना। जब हम इस बात का विचार करते हैं कि कौन सी बात ठीक है और कौन सी ठीक नहीं है, तब हम उस विषय का विवेचन करते हैं। प्रायः विद्यार्थियों को ऐसे निबन्ध भी लिखने पड़ते हैं, जिनमें किसी बात के दोष और गुण दिखलाने पड़ते हैं या किसी बात के पक्ष और विपक्ष की सब बातें बतलानी पड़ती हैं ; और अन्त में प्रायः यह निर्णय भी करना पड़ता है कि इनमें से कौन-सा पक्ष ठीक है और कौन-सा ठीक नहीं है। ऐसे अवसर पर दोनों अंगों या पक्षों का पूरा-पूरा विचार करना चाहिए और किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करना चाहिए। जो बात हमें ठीक जँचे, वह अच्छी युक्तियों से ठीक सिद्ध करनी चाहिए ; और जो बात ठीक न जँचे, उसका भी वैसी ही युक्तियों से खण्डन करना

चाहिए। हमारा विवेचन ऐसा होना चाहिए, जिसे देखकर पढ़नेवाले हमारी बात मान लें।

पर विवेचन का एक और अर्थ होता है—व्याख्या। कोई विषय लेकर विस्तार से उसकी सब बातें समझाना भी विवेचन ही कहलाता है। ज्ञान और विज्ञान आदि से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर जो कुछ लिखा जाता है, वह भी इसी विवेचन में आता है। हम यह भी बतला सकते हैं कि लेख किस प्रकार लिखना चाहिए और यह भी बतला सकते हैं कि आकाश में सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी आदि ग्रह किस प्रकार और कहाँ रहते हैं और किस प्रकार चक्कर काटते रहते हैं। हम यह भी बतला सकते हैं कि हवाई जहाज किन सिद्धान्तों पर और किस प्रकार बनते हैं; और यह भी बतला सकते हैं कि किन-किन देशों में कैसे-कैसे पेड़-पौधे उगते हैं। इस प्रकार की सभी बातें विषय का विवेचन कहलाती हैं।

इस प्रकार के विवेचनक निबन्ध लिखने के लिए विषय के बहुत अधिक ज्ञान की भी आवश्यकता होती है और लिखने की अच्छी योग्यता की भी। ऐसा विवेचन, जहाँ तक हो सके, सरल और स्पष्ट होना चाहिए। ऐसे विवेचनों में हम दूसरों के विचार भी रख सकते हैं और यह भी बतला सकते हैं कि वे विचार कहाँ तक ठीक हैं और कहाँ तक ठीक नहीं हैं।

हम ऊपर कह आये हैं कि कभी-कभी हमें किसी बात के दोषों और गुणों का भी विवेचन करना पड़ता है। पर कभी-कभी हमें एक ही पक्ष ग्रहण करना पड़ता है। हमें किसी बात के सम्बन्ध में सिद्ध करना पड़ता है कि वह ऐसी ही है, और किसी प्रकार की नहीं है। जिन निबन्धों में कोई एक ही पक्ष लेना पड़ता है, वे तर्कक कहलाते हैं। जैसे—हमसे कहा जा सकता है कि यह सिद्ध करो कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र भाषा है; या पृथ्वी

सदा सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। इस प्रकार के निबन्ध तर्कक कहलाते हैं। तर्कक निबन्ध लिखना बहुत ही कठिन होता है। इसमें अनेक प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता होती है और कुछ युक्तियाँ भी देनी पड़ती हैं। हम जो कुछ कहते हैं, उसके विरोध में जो बातें कही जाती हैं, उनपर भी हमें विचार करना पड़ता है; और अन्त में उनका खंडन भी करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर विरोधियों की बातें हँसी में उड़ाने से या उनपर ध्यान न देने से काम नहीं चल सकता। इसलिए हमें अपना पक्ष ऐसे ढंग से दूसरों के सामने रखना चाहिए कि वे हमारी बात पूरी तरह से मान लें।

अच्छे निबन्ध लिखने के लिए पहले अच्छे निबन्ध पढ़ना आवश्यक होता है। निबन्ध लिखने का अभ्यास करने के लिए पहले कोई अच्छा निबन्ध पढ़ जाना चाहिए; और तब उसे अपने मन से अपने शब्दों में लिखकर उस मूल निबन्ध से मिलाना चाहिए। अपने निबन्ध में जहाँ कमी या दोष दिखाई पड़े, वहाँ वह पूरी करनी चाहिए; और जहाँ दोष दिखाई पड़े, वहाँ से वह दूर किया जाना चाहिए।

जब इस प्रकार कुछ निबन्ध लिख चुकने पर अभ्यास हो जाय, तब स्वतन्त्र रूप से निबन्ध लिखने का अभ्यास करना चाहिए। इसके लिए पहले वे विषय लेने चाहिएँ, जिनसे अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो; या ऐसी घटनाएँ आदि लेनी चाहिएँ, जो स्वयं आँखों से देखी हों। दूसरों से सुने-सुनाये या पुस्तकों में पढ़े हुए विषयों पर कुछ लिखने की अपेक्षा अपने परिचित विषयों पर कुछ लिखना अधिक सहज होता है। ऐसे निबन्ध अपने मित्रों या बड़ों आदि को लिखे हुए पत्रों के रूप में भी हो सकते हैं।

निबन्ध लिखने का अभ्यास एक और प्रकार से किया जा सकता है। कोई अच्छी कहानी, नाटक या उपन्यास आदि पढ़कर उसके किसी एक पात्र या घटना के सम्बन्ध की सब बातें अपनी स्मरण-

शक्ति के आधार पर लिखी जा सकती हैं। आगे चलकर उसी ढंग पर अपने किसी परिचित व्यक्ति के विचार, चरित्र या व्यवहार आदि भी लिखे जा सकते हैं। अथवा किसी छोटी घटना का वर्णन सुनकर उसे विस्तार से भी लिखा जा सकता है। इससे कल्पना करने की शक्ति बढ़ती है। विशेषतः यदि इतिहास की कोई घटना लेकर और उसे कुछ बढ़ाकर लिखने का प्रयत्न किया जाय तो और भी अधिक लाभ हो सकता है।

अभ्यास के लिए नीचे लिखे विषयों पर निबन्ध लिखे जा सकते हैं—

नदी के किनारे का दृश्य।
सज्जनता का व्यवहार।
व्यायाम से लाभ।
त्योहार और मेले।
महापुरुषों के कार्य।
मन के कार्य।
बड़ों का आदर।
लड़ाई-झगड़े से हानि।
अनाज और फल।
समझदारी और मूर्खता।
सूर्य, चन्द्रमा और तारे।
जीवन पर साहित्य का प्रभाव।
आज-कल की सभ्यता।
घर के पालतू पशु-पक्षी।
अपने रहने का घर।
हमारी जन्म-भूमि।
प्रसन्न रहने के उपाय।
पुस्तकालयों से लाभ।
रोगों से बचने के उपाय।
देव-मन्दिर।
मिथ्या विश्वास।
दूध देनेवाले जानवर।
ऐतिहासिक कहानियाँ।
नदियों से लाभ।
किसी पुस्तक की विशेषताएँ।
बात-चीत करने का ढंग।

आदि आदि।

साहित्य-रत्न-माला

चुनी हुई पुस्तकें

बौद्ध-कालीन भारत

(लेखक — श्रीयुत पं० जनार्दन भट्ट, एम० ए०)

जिन लोगों ने इस माला की पहली पुस्तक "साहित्यालोचन" और दूसरी पुस्तक "भाषा-विज्ञान" को ध्यानपूर्वक पढ़ा है, उनसे इसके संबंध में हम केवल यह निवेदन करना चाहते हैं कि उक्त दोनों पुस्तकों की भाँति यह तीसरी पुस्तक भी बहुत उच्च कोटि की हुई है और इसने भी स्थायी साहित्य में स्थान पाया है। अँग्रेजी तथा हिन्दी आदि के सैकड़ों उत्तमोत्तम ग्रंथों का बहुत अच्छी तरह अध्ययन और मनन करके यह पुस्तक बहुत ही परिश्रमपूर्वक लिखी गई है। हिंदी के सभी बड़े बड़े विद्वानों ने इस ग्रन्थ की बहुत अधिक प्रशंसा की है और इसे बहुत उच्च कोटि का ग्रंथ कहा है। यह पुस्तक ऐतिहासिक होने पर भी उपन्यास का सा आनन्द देती है। साहित्य-प्रेमियों को, विशेषतः इतिहास-प्रेमियों को इसकी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। इस पुस्तक में आपके जानने योग्य सैकड़ों-हजारों उपयोगी बातें भरी पड़ी हैं, जिन्हें पढ़ते ही आप मुग्ध हो जायँगे। हिन्दी में यह अपने ढंग की अनुपम और अपूर्व पुस्तक है। पृष्ठ-संख्या प्रायः चार सौ से ऊपर है। बढ़िया ऐण्टिक कागज की जिल्द बँधी प्रति का मूल्य ३) और अच्छे चिकने कागज पर छपी सादी पुस्तक का मूल्य २॥) है।